प्राक्कथन

वे दिन थे धर्मान्धतापूर्ण उत्पीड़न के। सारे समाज का जीवन मुस्लिम आतंक से ग्रसित हो रहा था।

पांचवें गुरु श्री अर्जुन देव जी की निर्दयतापूर्ण हत्या (सन् १६०६), छठे गुरु श्री हरिगोविन्द जी को कैद किया जाना (सन् १६०९), नौवें गुरु श्री तेग बहादुर जी का वध (सन् १६७५), तथा दशम गुरु श्री गोविन्द सिंह जी के सुपुत्रों की क्रूरतापूर्ण हत्याएँ (सन् १७०४), इसी धर्मान्धता द्वारा किये गये घोर उत्पीड़न के मुंह बोलते ऐतिहासिक प्रमांण हैं।

गुरु गोविन्द सिंह जी के बाद तो यह यातनाचक्र और भी अधिक प्रचंडता से चला। वीर वैरागी और उनके साथियों का निष्ठुरतापूर्वक वध (सन् १७१६), कई दिनों तक चलता रहा। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, यातनाओं की तीव्रता में अधिकाधिक वृद्धि होती चली गयी। मुस्लिम आतंक की धाक बैठाने के लिए बाल वीर हकीकत राय का सर कलम करना (सन् १७३४) आवश्यक माना गया। स्वर्ण मन्दिर, अमृतसर के ग्रन्थी भाई मणि सिंह का अंग-अंग (सन् १७३८) काटा गया। नत्थानन्द तथा भाई महताबसिंह भी इसी आतंक के शिकार (सन् १७४५), बने। भाई तारूसिंह का प्राणांत उनकी खोपड़ी उधेड़ कर (सन् १७४५), किया गया।

यह क्रूरताएँ केवल कुछ गिने-चुने नेताओं अथवा सक्रिय व्यक्तियों पर ही न ढायी जाती थीं, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज, मुख्यतः सिख समुदाय को किसी अपराध के बिना ही कत्ल किये जाने लायक घोषित कर दिया गया था। लाहौर के सूबेदार जकरिया खान (मृत्यु-सन् १७४५) के समय से तो केशधारी हिन्दुओं की हत्या एक नित्य के मनोरंजक तथा आर्थिक लाभ देने वाले खेल का रूप धारण कर गई। छोटा घल्लूघारा (सन् १७४६) और बड़ा घल्लूघारा (सन् १७६२) इसी अन्धी असहिष्णुता के प्रकट प्रमाण हैं।

सारांशतः जब तक पंजाब में मुस्लिम राज्य रहा, क्रूरता का यह चक्र अनेक प्रकार से चलता ही रहा। अत्याचार की नई-नई विधियों का अविष्कार

किया गया। अनेक लेखकों के अनुसार, मुसलमान बनने से इनकार करने वाले वीरों को साधारणतः ११ प्रकार के तरीकों से यातनाएँ दे-दे कर मारा जाता था।

यह थेः- (१) चरखी, जिस पर बांध कर व्यक्ति को घुमाते थे और उसकी हड्डी पसली तोड़-मरोड़ देते थे। (२) सूली- एक तख्ते पर लिटा कर उसके सारे अंगों में कीलें ठोंक देते थे, जैसाकि ईसामसीह को सूली पर चढ़ाकर मारा गया था। (३) संगसार- किसी वृक्ष के साथ बांधकर ईट-पत्थरों से सर फोड़ना व हाथ-पांव तोड़ना। (४) तस्मेकशी- चमड़े के पट्टे बगलों के नीचे डालकर आदमी को मंथानी की तरह बिलो-बिलों कर और छाती तोड़कर मारना। (५) जम्बूरों (बड़े चिमटों) से मांस नोच-नोच कर मार डालना। (६) मूसलों से मूंज की तरह कूट-कूट कर मारना। (७) धरती में कमर तक गाड़कर चांदमारी करना। (८) कुत्तों से कटवा कर मारना। (९) गले में फन्दा डालकर मारना। (१०) गरम तवों के ऊपर बिठाना। ऊपर से गरम तेल डालकर मारना। (११) पानी की देग में बिठाकर उबालना।

हम अनुमान कर सकते हैं कि जिन दिनों यह यातनाएँ आम थीं, उस समय हिन्दुओं का मनोबल कितना ऊँचा रहा होगा। भयंकर यातनाओं के बावजूद उन्होंने न केवल घुटने टेकने से इन्कार कर दिया, बल्कि हर नये आघात पर मौत से पंजा लड़ाने का नित्य नूतन उत्साह संचित किया।

महाराजा रणजीत सिंह के उदय (जन्म १३ नवम्बर, १७८० से पहले की, लगभग ७० वर्ष की ऐसी ही अवधि के 'लहू और लोहे के खेल' से सम्बन्धित कुछ प्रातिनिधिक कथाओं को प्रस्तुत पुस्तिका में संकलित किया गया है। यह उस समय की परिस्थिति का विश्लेषण भी करती हैं, और प्रेरणादायक भी हैं। श्री सत्येन्द्र पाल वेदी, (व्यवस्थापक, राष्ट्र धर्म प्रकाशन, लखनऊ) तथा श्री अनन्त रामचंद्र गोखले के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जिन के परम सहयोग तथा प्रेरणा से प्रिय पाठकों के सम्मुख पहुंचने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

- मदन लाल विरमानी

विषय क्रम

क्र.सं.		पृष्ठ
१.	रहस्यमय पत्र	७
२.	गुरु की काशी	१५
३.	प्रतिशोध की आग	२३
४.	कट-कट मरने में आनन्द	३२
५.	खूनी वसन्त	४१
६.	भाई मणि सिंह की शहादत	४८
७.	मस्सा खान रंगड़ का अन्त	५४
८.	क्या डर कर मुँह मोड़ लें ?	६१
९.	वे प्राणों पर खेल गये, पर मुसलमान न बने	६६
१०.	इनके तो सिर-कटे धड़ भी लड़ते हैं	७०
११.	असीं दूणें चौंणे होए	७५
१२.	सन् १७६२ का बड़ा कत्ले-आम	८०

रहस्यमय पत्र

"हमारे दिल ने चाहा, मगर अल्लाह भी तो चाहता।" मुगल सम्राट औरंगजेब रुग्ण शैय्या पर लेटा-लेटा अत्यन्त मायूसी के आलम में बुदबुदाया, 'हमने जिस बात को चाहा, अल्लाह ने उसे नहीं चाहा। हम चाहते थे कि हिन्दुस्तान की इस दार-उल-हरब (काफिरों का देश) को दार-उल-इस्लाम (इस्लाम का देश) में परिवर्तित कर दें। किन्तु न जाने क्यों अल्लाह ने ही इसे नहीं चाहा।"

तीव्र ज्वर के कारण उस पर तंद्रा सी छा रही थी। शाही हकीम हाजिक खां अपनी अनुभूत औषधियों के द्वारा उसका उपचार करने में यद्यपि पूरी तरह से यत्नरत था, किन्तु चिन्तित भी कम न था। उसके हाथ में शफा थी। लगभग १७ मास पूर्व, सितम्बर, १७०५ ई. में जब बादशाह देवापुर में गम्भीर रूप से बीमार हुआ था, यहां तक कि उसकी मृत्यु की अफवाह भी चारों ओर फैल गई थी, तो उसी ने 'चोपचीनी' औषधि के एक योग का सेवन करवा कर बादशाह की प्राण रक्षा की थी। स्वस्थ हो जाने पर औरंगजेब ने उसके सम्मान में एक समारोह का आयोजन कर उसे सोने से तोला था। परन्तु अब यहां अहमदनगर में ज्वर का जो आघात हुआ था, वह उसे अत्यधिक प्रचण्ड तथा भयानक दिखाई दे रहा था। वह अपने सभी परीक्षित औषधि-योगों द्वारा बादशाह का उपचार कर रहा था। पर इस बार उसे बादशाह के सांसों की डोर टूटती दिखाई दे रही थी।

औरंगजेब की इस अस्वस्थता में कुछ गिने-चुने विश्वस्त व्यक्ति ही उसके पास थे। उसके लड़के भी उससे दूर थे, क्योंकि उन्हें तो उसने किसी न किसी बहाने से स्वयं ही अपने से दूर भेज दिया था। उसे भय था कि कहीं वे उसके साथ भी वही दुर्व्यवहार न करें, जो उसने खुद अपने पिता

शाहजहां के साथ उसके अंतिम दिनों में बन्दी बनाकर किया था।

औरंगजेब की बेगम उदयपुरी, शहजादी जीनत-उन-निसा, वजीर असद खां, शाही हकीम हाजिक खां, हमीद-उद-दीन खां व अमीर खां जेसे कुछ एक विशेष कृपापात्र- बस यही गिनती के लोग थे, जो उसकी इस बीमारी के समय उसके पास थे। इनके सिवा और कोई न तो उसका हितैषी ही यहां अहमदनगर में दिखाई देता था और न वास्तविक अर्थों में उसका कोई सहायक ही, यद्यपि वह गत २५ वर्षों से भारी सेना लेकर इधर दक्षिण में युद्धरत था और इस समय भी उसके पास हजारों की फौज थी। उसके पुत्र और विभिन्न सूबेदार व सेनापति, सब इस ताक में थे कि कब औरंगजेब आंखें मूंदे और कब वे मौके का लाभ उठाकर अपना स्वतंत्र प्रभुत्व स्थापित करें।

औरंगजेब को खुद को भी मौत सामने खड़ी दिखाई दे रही थी। उसने एक आह भरी। फिर करवट बदली। ९० वर्ष की बूढ़ी उसकी आंखों ने आस पास नजर दौड़ाई। उसे सब कुछ क्षण- भंगुर सा प्रतीत हुआ। उसने एक कविता के निराशा भरे कुछ अंश उच्चारित किये, जो इन दिनों प्रायः उसके मुख से निकला करते थे-

'जब पहुंचोगे अपने अस्सीवें- नब्बेवें बरस-
ढाये होंगे वक्त ने कई मुसीबतों के पहाड़,
और जब पहुंचोगे तुम, उस हद से सोंवें बरस तक-
मौत आकर पहन लेगी।तेरी जिन्दगी का लिवास।।

बादशाह की सेवा में उपस्थित अमीर खां ने उसे तसल्ली देनी चाही और कहा,'जहांपनाह ! गुस्ताखी माफ फरमायें। बन्दा अर्ज करता है कि यह तो कविता का मात्र आधा-अधूरा हिस्सा है। आगे की सतरें गौरतलब हैं हजूर-

'सो तुम्हारे लिए वाजिब यही कि रहो खुशदिल।
क्योंकि खुश रह कर ही सम्भव है मालिक की याद।।'

पास बैठे वजीर असद खां, जो स्वयं भी इस समय ८२ वर्ष का हो

चुका था, ने भी बादशाह को दिलासा देना चाहा। सब को लगा कि बादशाह उठने की कोशिश में है। उसे सहारा देने के लिए उसकी बेगम और लड़की दोनों उठीं भी, लेकिन उन्होंने पाया कि बादशाह की दुर्बलता उसकी इस कोशिश में उसके आड़े आ रही है। बादशाह ने इस प्रयास में गीली हो गई अपनी आंखें पुनः बन्द कर लीं। उसका मस्तिष्क किसी अनसुलझी सोच में खो गया।

वह अतीत की अनेक घटनाओं का स्मरण करने लगा कि साम्राज्य-प्राप्ति के लिए उसने किस प्रकार षड्यन्त्र करके अपने पिता शाहजहां के जीते-जी ही सिंहासन हथिया लिया था, तथा उसे बन्दी बना लिया था, किस प्रकार नीचतापूर्ण रीति से अपने भाइयों और भतीजों के खून से हाथ रंगे थे, हिन्दुओं के प्रति विषाक्त नीति अपनाते हुए किस प्रकार उन पर जजिया कर लगाकर तथा हर सम्भव ढंग से तिरस्कृत करते हुए उनका मनोबल तोड़ने की वह हर कोशिश करता आया था उसे स्मरण हो आया कि किस प्रकार उसने काशी स्थित विश्वनाथ मंदिर, मथुरा के केशव राय मंदिर तथा सोमनाथ के विश्वविख्यात मंदिर को ध्वस्त किया था, और कुछ अन्य मन्दिरों की मूर्तियों को दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों में दबवा दिया था ताकि आने जाने वाले हर मुसलमान के पैरों तले वह रौंदी जाती रहें। उसकी आंखों के सामने वह दृश्य नाचने लगे कि जब उसने हिन्दुओं को तलवार के जोर पर मुसलमान बनाने के लिए कोई कसर न उठा रखी थी। उसने लाखों निर्दोष हिन्दुओं का जीवन नारकीय बना देने में निर्दयता को भी लज्जित कर दिया था। परन्तु उसकी सब कामनायें अकारथ गई थीं। हिन्दुस्थान को दार-उल-इस्लाम बना देने का उसका स्वप्न, कोरा स्वप्न ही रहा था।

औरंगजेब को अब कई प्रकार के विचारों ने घेर लिया। यह विचार आपस में गड्ड-मड्ड से हो रहे थे। उसे लग रहा था कि उसके पापों की गठरी काफी भारी हो गई हैं। स्थान-स्थान से मिल रही चुनौतियों ने उसे विचलित कर दिया था।

उसका शरीर कांपने लगा। न मालूम ज्वर की तीव्रता के कारण उसकी

यह अवस्था थी या पश्चाताप का आवेग उसके शरीर में कंपकंपी पैदा कर रहा था। उसे लगा कि किसी उफनते हुए सागर से उठने वाली भयंकर लहरें उछलती-कूदती उसकी ओर बढ़ती चली आ रही हैं, उसे और उसकी सारी अर्जित कमाई के साथ तख्ते-मुगलिया का भी सर्वनाश करने के लिए बड़ी तेजी से लपकती आ रही हैं। इन लहरों में उसे दिखाई दे रहे थे वीर मराठे, मालवा के रण बांकुरे भील, ईडर के गर्वीले राठौड़, बीकानेर व पलामू के राजा प्रताप राय, बुंदेलखंड केसरी चम्पत राय और उनके पुत्र वीर छत्रसाल, मथुरा के अनखीले जाट, नारनौल और मेवात के साहसी सतनामी, और इन सब से भी अधिक आवेश पूर्ण मुद्रा में थे अपने पिता गुरु तेग बहादुर की हत्या का बदला लेने को आतुर गुरु गोविन्द सिंह। गुरु गोविन्द सिंह का ख्याल आते ही उनके पत्र में लिखित यह शब्द औरंगजेब के कानों में गूंजने लगे-

"चूकार अज हमह हीलते दर गुजश्त।

हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त।।'

(जफरनामा-२२)

(यदि नीति के सभी उपाय असफल हो जायें, तो हाथ में तलवार उठा लेना जायज ही है।)"

उसे लगा कि उसकी ओर एक नाग फुंकारे मारता हुआ और यह कहता हुआ तेजी से दौड़ा हुआ चला आ रहा है-

"चिहाशुद कि चूं बच्चगां कुश्तह चार।

कि बाकी बमांदस्त पेचीदह मार।।"

(जफरनामा-७५)

(क्या हुआ जो मेरे चार बच्चे मारे गये, अभी तो कुंडलीदार विषैला सांप बाकी है।)

इस विचार के आते ही बादशाह के माथे पर पसीने की बूंदें उभर आईं। वह इधर-उधर झांकने लगा कि कहीं सचमुच ही तो कोई विषधर उसके

बिस्तर में नहीं आ घुसा है। निकट बैठे शाही हकीम हाजिक खां का ध्यान इस ओर गया। उसने देखा कि बादशाह बहुत बेचैनी अनुभव कर रहा है। रात काफी बीत चुकी थी। उसने कोई घोल बादशाह को पिलाया, जिसके प्रभाव से बादशाह सो तो गया किन्तु नींद में भी उसके चेहरे के हाव-भाव यह बता रहे थे कि उसके बेहद कमजोर हो चुके मन और मस्तिष्क अभी भी अनेक चिन्ताओं के शिकार हो रहे हैं।

प्रातः जब बादशाह की नींद खुली तो उसकी तबियत बजाए सुधरने के कुछ ज्यादा ही खराब थी। दर्द के मारे सिर फटा जा रहा था, बुखार ज्यादा तेज हो गया था। चेहरा जर्द, और अंग-अंग पीड़ा से ग्रस्त था। गुरु गोविन्द सिंह के पत्र के यह शब्द नींद में भी उसे प्रताड़ित करते रहे थे-

'न ईमां परस्ती, न ओजाएं दीं।

न साहिब शनासी न मुहम्मद यकीं।।'(जफरनामा-४६)

(औरंगजेब न तो तू दीन-ईमान पर कायम है और न तू शरा-शरीयत, इस्लाम के सिद्धान्तों का पाबन्द है। न तुमने परमात्मा को पहचाना है और न ही तेरा हजरत मुहम्मद पर ही विश्वास है।)'

उक्त पत्र में दिया गया वृत्तांत तथा स्पष्टोक्तियां उसे रात भर कचोटती रही थीं। यह पत्र गुरु जी ने उसे चमकौर दुर्ग त्यागने के पश्चात मुक्तसर की ओर बढ़ते समय मार्ग में दीना नामक स्थान से लिखा था। वे उस समय अपने जीवन की सबसे कठिन घड़ी में से गुजर रहे थे। उनके पास न सेना थी, न कोई ठिकाना। वे जंगलों में फटेहाल घूम रहे थे। जहां कहीं जरा सा भी ठौर मिलता, वे प्रभु का धन्यवाद कर वहीं कुछ समय के लिए टिक जाते। ऐसी एकाकी तथा विपन्न अवस्था में ही सर्वसाधन-सम्पन्न बादशाह को लिखे इस पत्र में किसी प्रकार की निराशा या प्रार्थना का लेशमात्र भी न था। उन्होंने औरंगजेब को उसके कुकृत्यों का दर्पण दिखाने का प्रयत्न किया था, उसकी ताड़ना की थी, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई महापुरुष किसी अल्पबुद्धि प्राणी को उसके द्वारा किये जाने वाले पापों के प्रति चेतावनी देता है।

पत्र का सारांश इस प्रकार था–

"मुझे तेरी सौगन्ध पर विश्वास नहीं है जो तू खुदा के नाम पर खा रहा है। तेरा सूबेदार ओर मंत्रीगण सब झूठे हैं। जो व्यक्ति तेरी कुरान की शपथ पर विश्वास कर लेता है, वह नष्ट हो जाता है। तूने कुरान की सौगन्ध खाकर यह संदेश भेजा था कि यदि हम आनन्दपुर छोड़ कर चले जायेंगे, तो तू हमें सुरक्षित निकल जाने देगा। किन्तु वचन भंग करते समय तेरे खुदा का भय तुझे तनिक भी अनुभव न हुआ। बाद में चमकौर में मेरे चालीस शिष्यों पर वचन भंग करने वाले तेरे लाखों लोग तीर, तलवारें और बन्दूकें लेकर अचानक टूट पड़े।

"मुझे पता नहीं था कि विश्वासघात करने वाला तू माया का पुजारी और बेईमान है। न तेरा दीन है, न कोई ईमान। न तुझे ईश्वर की पहचान है और न ही पैगम्बर मुहम्मद पर विश्वास। तुझे कुरान की सौगन्ध का भी पास नहीं है।"

"तुम अन्धे बनकर किसी पर तलवार न चलाओ क्योंकि कोई अलौकिक शक्ति तुम्हारा खून भी तलवार से पी जाएगी। भगवान तुझे तेरे कुकर्मों का फल अवश्य देंगे। तुझ में अनके गुण हैं किन्तु उनके होते हुए भी तू दीन (धर्म) से बहुत दूर है। अपने राज्य की जड़ों पर अपने ही हाथ से कुल्हाड़ा मत चला। यदि तेरी दृष्टि अपनी सेना और धन की ओर है, तो मेरी दृष्टि ईश्वर की कृपा पर है।"

औरंगजेब ज्यों–ज्यों इस पत्र की पंक्तियों पर विचार करता, त्यों–त्यों उसे अपने कुकर्मों पर अधिकाधिक पश्चाताप होता। उसका सारा जीवन युद्ध में बीता था, जिससे वह अब ऊब चुका था। एक ओर देश में भिन्न–भिन्न स्थानों पर उभर रही शक्तियां, दूसरी ओर बुढ़ापा और उसमें भी बीमारी का जबरदस्त आघात, इन सब ने मिलकर जहां उसे निराशा के गर्त में धकेल दिया था, वहां गुरु गोविन्द सिंह जी के इस पत्र में की गई उसकी भर्त्सना ने उसके मन में पश्चाताप के भाव उत्पन्न कर दिये।

वह अपने भविष्य के प्रति सशंक तथा भयभीत हो गया। दोजख के नजारे उसकी आंखों के सामने नाचने लगे। वह यकायक चिल्लाया, 'या अल्लाह, बख्श! सचमुच, बहुत पाप हुए हैं हम से! हमने गुरु गोविन्द सिंह को मिलने के लिए आने को कहला भेजा था। किन्तु वह आज तक आये क्यों नहीं? क्या उनके दीदार किये बिना ही हमें इस जहान से रुखसत होना पड़ेगा?'

उसके जीवन के यह आखिरी दिन थे। उसने शीघ्रता से अपने दो बेटों आजम और कामबख्श को पत्र लिखवाये, जिनका सार इस प्रकार था, 'मैं अकेला आया था और अकेला ही जा रहा हूं। मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं और मैं क्या करता रहा हूं। मैं अपनी हकूमत में अच्छा शासन नहीं दे सका। इतना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ में ही नष्ट हो गया। मैं इस संसार में कुछ भी लेकर नहीं आया था। पर अब अपने साथ अपने पापों का फल लेकर जा रहा हूं। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या सजा भुगतनी पड़ेगी।' अपने वसीयतनामा में भी उसने लिखा, 'मैं अपने जीवन में असहाय रहा हूं और असहाय अवस्था में ही जा रहा हूं।'

गुरु जी के पत्र के ऐसे दूरगामी व प्रभावी परिणामों के कारण ही यह पत्र जफरनामा अर्थात विजयपत्र के नाम से इतिहास में विख्यात है। और फिर शीघ्र ही (२१ फरवरी १७०७ ई.) संसार ने सुना कि अबुल मुजफ्फर मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह–ए–गाजी (शाहजहां को बन्दी बनाने के बाद २२ जुलाई, १६५८ को स्वयं को बादशाह घोषित करते समय औरंगजेब द्वारा धारण की गई उपाधि) का शानदार नाम और खिताब धारण करने वाला धर्मान्ध बादशाह सचमुच ही अपने पापों की गठरी का बोझ ढोता हुआ चल बसा है।

औरंगजेब की मृत्यु पर यह किंवदंती सर्वत्र प्रख्यात हो गई कि पंजाब से एक पत्र (जफरनामा) बादशाह को मिला था। वह पत्र जादू का पत्र था। उसी ने यह गुल खिलाया। किसी ने कहा कि उसके पढ़ने से ही औरंगजेब अस्वस्थ होकर काल का ग्रास बना। कोई कहता कि गुरु गोविन्द सिंह हिन्दुओं

के पीर होने के कारण जन्तर–मन्तर जानते हैं। उन्होंने मंत्रादि युक्त जो चिट्ठी लिखी, उसी के प्रभाव से बादशाह बीमार रहने लगा और शीघ्र ही अल्लाह को प्यारा हो गया। जिसके ख्याल में जो कुछ आ रहा था, कहे जा रहा था। किन्तु सबका संकेत उसी जफरनामा की ओर था कि उसी की रहस्यमय शक्ति के अमोघ प्रभाव से यवन नरेश मरा है। आम लोगों में सर्वदूर बस यही एक चर्चा थी।

गुरु की काशी

सन् १७०६, बसन्त ऋतु पारम्भ हो चुकी है।

स्थानः लिखन सर–पवित्र ऐतिहासिक तीर्थस्थल दमदमा साहिब (तलवंडी साबो, जिला भटिण्डा) का एक भाग।

गुरु गोविन्द सिंह जी भाई मणि सिंह को गुरु ग्रंथ साहिब की नई बीड़ (प्रति) तैयार करवा रहे हैं।

इस पवित्र ग्रंथ की रचना पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी ने (सन् १६०४) की थी।

श्री दशमेश जी ने प्रयत्न किया कि वह पुण्य ग्रंथ उन्हें मिल जाए, किंतु उनकी यह कोशिश वृथा गई। करतारपुर के बाबा धीरमल, जिनके पास यह ग्रंथ था, को इसे अपने पास रखने से आदर व महत्व प्राप्त होता था। अतः उन्होंने ग्रंथ साहिब की अपनी बीड़ देना स्वीकार न किया। बल्कि कहला भेजा कि यदि गुरु साहिब सचमुच ही सच्चे पातशाह हैं तो वे स्वयं ही ग्रंथ क्यों नहीं रच लेते।

'ठीक है !' गुरुजी ने कहा था, ऐसा ही होगा।

यह एक पवित्र अवसर माना गया। अलग से एक शामियाना तान दिया गया। गुरु गोविन्द सिंह जी वहां ध्यान समाधि लगाकर बैठ जाते और अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर गुरु ग्रंथ की वाणी का उच्चारण करने लगते। भाई मणि सिंह उसे लेखनीबद्ध करते चले जाते।।

गुरुजी का यह नित्य–क्रम बन गया। पवित्र वाणी अमृत स्रोत की भाँति उनके मुखारविन्द से प्रवाहित होती हुई भाई मणि सिंह द्वारा लिपिबद्ध होती

चली गई। पहले वाले ग्रंथ की वाणी में वे अपने पूज्य पिता नौवें गुरु श्री तेग बहादुर जी की वाणी भी यथास्थान यथाक्रम समाविष्ट करवाते चले गयेः–

सभ सुखदाता रामु हैं, दूसर नाहिन कोइ।
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरत गति होइ ।।९।।

आदि ग्रंथ है राममय रचना। निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। पहले पांचों गुरुओं की वाणी के साथ नौंवीं पातशाही की वाणी भी गुरु गोविन्द सिंह जी के मुख से निरन्तर उच्चारित होने लगी और मानव कल्याणार्थ ग्रंथ के रूप में मणि सिंह द्वारा अंकित होती चली गई–

बल छुटि गयो बन्धन परे, कछू न होत उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि, गजि ज्यों होय सहाय।।५३।।
(म.९, पृष्ठ १४२९)

(शक्ति जाती रही हैं, बंधन पड़ गये हैं। कोई उपाय नहीं रहा है। नानक कहते हैं कि अब केवल हरि की ही शरण है। वह उसी प्रकार सहायता करेंगे, जिस प्रकार उन्होंने गजराज की रक्षा की।)

गुरु तेग बहादुर जी को जब औरंगजेब ने दिल्ली जेल में बंद कर दिया था और उन्हें आनन्दपुर लौटने की आशा न रही थी तो उन्होंने बालक गोविन्द राय को भावी गुरु बनाने की विधि पूर्ण करने के लिए पांच पैसे और नारियल भेजे और साथ ही उपरोक्त श्लोक भी लिख भेजा था।

तब इसके उत्तर में पूर्ण आशावाद व विश्वास से भरा उत्तर बालक गोविन्द राय ने भेजा था, वही एक मात्र श्लोक गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपनी वाणी के रूप में यहां संकलित करवायाः–

बल होआ, बन्धन छुटे, सब कछू होत उपाय।
नानक सब किछु तम्हरे हाथ में, तुम्हीं होत सहाय।।५४।।
(म.१०, पृष्ठ १४२९)

तत्पश्चात पुनः गुरु तेग बहादुर जी की वाणी दशमेश जी के मुख से प्रवाहित होती चली गयी–

संग सखा सभ तजि गए। कोऊ न निभयौ साथ।
कहु नानक इह विपत में टेक एक रघुनाथ ।।५५।।

इस प्रकार शीघ्र ही गुरु ग्रंथ साहिब का सम्पादन पूर्ण हो गया। यह महान कार्य सम्पूर्ण होने पर बड़े हर्षोल्लासपूर्वक उत्सव मनाया गया। गुरु जी ने इस शुभ अवसर पर यत्र–तत्र अनेक कलमें बिखेर कर तथा स्याही छिड़क कर इस स्थान को विद्या केन्द्र घोषित किया।

आनन्दपुर चमकौर तथा मुक्तसर की लड़ाइयों के बाद गुरु गोविंद सिंह जी ने यहां तलवंडी साबों में आकर 'दम' लिया था। अतः यह स्थान 'दमदमा साहिब' के नाम से विख्यात हुआ और यहां सम्पादित हुई गुरु ग्रंथ साहिब की बीड़ 'दमदमा वाली बीड़' या हजूरी बीड़ के नाम से जानी जाने लगी। सिख गुरुद्वारों में आज विद्यमान 'आदिग्रंथ' इसी बीड़ पर आधारित है।

गुरु जी के दमदमा साहिब में पधारने (२० जनवरी, १७०६ ई.) के पश्चात आनन्दपुर साहिब की तरह अब यहां भी अनेक विद्वान तथा योग्य कवि गुरुजी के हजूर में आ जुड़े थे। उसी भांति यहां भी फिर से नित्य ही दरबार सजने लगा था।

आनन्दपुर में गुरुजी की उपस्थिति में हर रोज साहित्य–गोष्ठियां सजा करती थीं। उनमें प्रश्नोत्तर भी होते थे। कवियों को अपना ज्ञान प्रकट करने का पूरा–पूरा अवसर मिलता था। गुरुजी साहित्य की प्रभावी शक्ति के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। उन्होंने साहित्य द्वारा जन चेतना के महत्व को भली–भांति समझा था। इसलिए साधारण वातावरण शांत न होते हुए भी उन्होंने साहित्यिक कार्य को एक प्रकार से जंगी पैमाने पर ही करवाया था। आनन्दपुर दरबार में उनकी प्रेरणा से उपनिषदों, महाभारत और बहुत से अन्य प्रसिद्ध हिन्दी व संस्कृत ग्रंथों का गुरुमुखी लिपि में अनुवाद करवाया गया था।

आनन्दपुर की साहित्य गोष्ठियां श्रोताओं का मनोरंजन भी करती थीं और उनके ज्ञान में वृद्धि भी। कई बार कवियों में मनोरंजक नोक-झोंक भी चलती थी। एक बार चन्दन नाम का एक अभिमानी कवि गुरुजी के दरबार में उपस्थित हुआ। उसने सभी कवियों की विद्वता परखने के लिए एक सवैया पढ़ा। उसे घमण्ड था कि कोई भी कवि उसके अर्थ न कर सकेगा। सवैया था:-

नवसात तिये, नवसात किये, नवसात पिये,नवसात पियाए।
नवसात रचे, नवसात बदे, नवसात पया पहि दायक पाए।।
जीत कला नवसातन की, नवसातन के मुख अंचर छाए।
मानहु मेघ के मंडल मैं कवि चन्दन चंद कलेवर छाए।।

इन गोष्ठियों में अहंकार प्रदर्शन व गर्वोक्तियों की परम्परा न थी। अतः गुरुजी ने उसका गर्व चूर्ण करने के लिए अपने किसी कवि को इस सवैया के अर्थ करने की आज्ञा देने की बजाए घोड़ों की देखभाल करने वाले सेवक धन्नासिंह को बुला भेजा और इसके अर्थ करने के लिये कहा। उसने इसकी व्याख्या बड़ी सरलता से कर दी,'सोलह (नव + सात)वर्षीय सुन्दरी ने सोलह श्रृगांर किये, सोलह मास के पश्चात उसका पति घर आया था। उसने सोलह घरों वाली चौसर बिछाई। दोनों ने सुखकारक सोलह दांव लगाये। सोलह के सोलह दांव उसके प्यारे पति ने जीत लिये तो सोलह वर्षीय सुन्दरी ने अपने मुख पर आंचल डाल लिया। तब ऐसा लगा कि मानों मेधों के परदे में से चन्द्रमा ही झांक रहा हो।'

अब धन्ना सिंह की बारी थी चन्दन कवि का अहंकार पूरी तरह नष्ट करने के लिए उसने दो सवैये कहे, जिनके अर्थ चन्दन को करने थे:-

मीन मरे जल के परसे, कबहू न मरे पर पावक पाए।
हाथी मरे मद के परसे, कबहू न मरे तन ताप के आए।।
तीय मरे पिय के परसे, कबहू न मरे परदेश सिधाए।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज! विचार सके न बिना चित्त लाए।।१।।
कउल मरे रवि के परसे, कबहू न मरे ससि की छवि पाए।

मित्र मरे मित के मिलिबे, कबहू न मरे जब दूर सिधाए।।
सिंघ मरे जबि मास मिले, कबहू न मरे जबि हाथ न आए।
गूढ़ मैं बात कहीं दिजराज! विचार सके न बिना चित लाए।।२।।

उपरोक्त सवैये उलटबांसी (ऐसी उक्ति, जिसमें साधारण व्यवहार आदि के विरुद्ध बात कही गई हो) प्रकार के नहीं थे। इनमें बस छन्द की नियमित यति (विराम) का प्रयोग नहीं हुआ था। यदि प्रत्येक पंक्ति में विराम 'कबहू न' से पहले की बजाए उसके बाद रख दिया जाए तो दोनों सवैयों का सीधा सरल अर्थ समझ में आ जाता है किन्तु चन्दन की अभिमान भरी बुद्धि इस सरलता को न छू सकी। इस प्रकार उसका अभिमान दूर हो जाने पर गुरुजी ने उस कवि को भी अपनी सभा में आश्रय दे दिया।

तात्पर्य यह कि आनन्दपुर अनेक प्रकार से एक बड़े साहित्यिक केन्द्र के रूप में पुष्पित-पल्लवित होता चला गया था। दशमेश जी आध्यात्मिक गुरु होने के साथ ही साथ जहां एक अनुपम योद्धा थे, वहां कलम के भी महारथी थे। उन्होने इस दिशा में कितने ही व्यक्तियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी थी। उनमें से ५२ तो कवि ही थे। आनन्दपुर की साहित्यिक उपलब्धि इस बात से आंकी जा सकती है कि उस साहित्यिक सामग्री का भार नौ मन बताया जाता है, जो आनन्दपुर-त्याग के समय बहुत कुछ नष्ट हो गई थी या इधर-उधर बिखर गयी थी। गुरुजी ने वहां लगातार २० वर्ष (सन् १६७८ ई० से सन् १६९८ई०.) तक साहित्य रचना का कार्य करवाया था।

अपने दरबारी रत्नों में से एक धुरंधर विद्वान प्रह्लाद राय से उन्होंने उपनिषदों का अनुवाद (सन् १६८९) शुरू करवाया था। कवि कांशी राम से पांडव गीता का अनुवाद (सन् १६९०) करवाया। इसी प्रकार महाभारत के पर्वों के अनुवाद अलग-अलग कवियों द्वारा (सन् १६९५-९६ ई.) करवाये थे। सन् १६९८ ई. में गुरुजी ने विचित्र नाटक को अंतिम रूप दिया था। उन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं को दशम ग्रंथ में संकलित करवाया था, और बाकी कवियों की सारी रचनायें 'विद्या सागर' नाम के अन्तर्गत संचित करवायी थीं।

'दशम ग्रंथ' तथा 'विद्या सागर' दोनों महान ग्रंथ आनन्दपुर दरबार की विशेष उपलब्धि थे, जो भावी के चक्र में शत्रुओं के हाथों नष्ट हो गये थे। गुरुजी की प्रेरणा से दशम ग्रंथ तो भाई मणिसिंह ने बाद में पुनः सम्भाल दिया, किन्तु 'विद्यासागर' ग्रन्थ की संभाल के बारे में कोई विशेष यत्न न हुआ।

गुरुजी कृपाण और कलम दोनों के प्रेमी थे, शस्त्र और शास्त्र दोनों के धनी थे। अतः अब जब उन्हें तलवंडी साबो में कुछ समय दम लेने का अवसर मिला, तो वे सैनिक गतिविधियों के साथ साहित्य सृजन के कार्य को भी न भूले। दमदमा जैसी एकान्त बियाबान जगह को लेखकों का आश्रय-स्थल बनाकर उन्होंने उसे 'गुरु की काशी' अर्थात् ज्ञान-केन्द्र बना दिया। यहां उन्होंने एक ओर जहां 'आदि ग्रंथ' का सम्पादन किया, वहां 'दशम ग्रंथ' के भी कुछ भाग पुनः संकलित करवाये। साहित्यकारों की एक मंडली पुनः यहां एकत्रित हो गई। उल्लेखनीय है कि गुरुजी यहां मात्र ९ मास, ९ दिन ही ठहरे।

दशम ग्रंथ के अन्तर्गत जाप, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक, चंडी चरित्र, वार श्री भगवती जी दी, चौबीस अवतार तथा जफरनामा आदि अनेक रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनमें से 'वार श्री भगवती जी दी' पंजाबी में और 'जफरनामा' फारसी भाषा में हैं। शेष रचनाएँ हिन्दी में हैं।

विचित्र नाटक में गुरुजी स्वयं को श्री रामचन्द्र जी के वंशज बतलाते हैं। 'चौबीस अवतार' के दो प्रमुख भाग हैं-रामावतार और कृष्णावतार। रामावतार का कार्य 'असुर संहार' है। इसी प्रकार 'कृष्णावतार का हेतु 'लोक रक्षण' है। गुरु गोविन्द सिंह जी का प्रिय रस 'वीर रस' है। इन अवतारों की कथाओं में अधिक विस्तृत वर्णन उनके 'शत्रुहंता' रूप का ही किया गया है।

अपने जीवनोद्देश्य का हेतु बताते हुए श्री दशमेश कहते हैं:-

हम इह काज जगत मो आए, धर्म हेत गुरुदेव पठाए।
जहां तहां तुम धर्म बिथारो, दुसट दोखियन पकरि पछारो।।
(विचित्र नाटक,६/४२)

("दुष्टों और धर्मद्वेषियों को पकड़ कर उनका विनाश करो तथा हर

स्थान पर धर्म का प्रचार करो" इस धर्म (कल्याण) कार्य को पूर्ण करने के लिए ही प्रभु ने मुझे भेजा है। मैं जगत में इसी कारण जन्म धारण करके आया हूं।)

इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुजी ने अपने सद्प्रयासों द्वारा जिस जीवट और साहस के व्यक्तियों का निर्माण किया, वह भी अनुपम ही है। बात उन दिनों की है, जब गुरुजी यहां तलवंडी साबो में अपने परम मित्र डल्ला के पास पधारे ही थे। चौधरी डल्ला इस क्षेत्र का प्रमुख जमींदार था। वह जाति का सिधू बराड़ (जाट) था। सारे इलाके के सभी सिधू बराड़ उसकी आज्ञा में इस तरह संगठित थे जैसे माला के मोती। उसके पास हथियार बंद शूरवीरों का अच्छा खासा जत्था था। उसने गुरुजी के कष्टों तथा विपत्तियों की सारी गाथा सुनी कि किस प्रकार गुरुजी निरंतर संकटों से घिरे रहे थे, किस प्रकार उनसे आनन्दपुर छिना, चमकौर नष्ट हुआ, चारों साहिबजादे बलिदान हुए। वह दुःख भरी आवाज में बोला, "आपने मुझे सूचित क्यों नहीं किया? मैं और मेरे आदमी इन अत्याचारी मुसलमानों को पीस कर रख देते !"

गुरुजी को उसके इन शब्दों में अहंकार की गंध प्रतीत हुई। वे बस मुस्करा दिए और कहा, 'तुम वीर हो डल्ला! परन्तु तुम्हारे आदमी बहुत बहादुर नहीं हैं।'

"नहीं महाराज, ऐसी बात नहीं।" डल्ला बोला "अपने आदमियों पर मुझे पूरा भरोसा है। उनमें बला का साहस है। उनमें निर्भयता कूट-कूटकर भरी है। वे मेरे एक संकेत पर साक्षात मृत्यु से भी भिड़ जाने को तैयार रहते हैं।"

गुरुजी ने कहा, "अच्छी बात है, मौका आने पर अवश्य ही उनका उपयोग करेंगे।"

और दूसरे दिन ही वह मौका आ गया। संयोगवश लाहौर से आने वाले कुछ शिष्यों ने गुरुजी को एक बन्दूक भेंट की। गुरुजी ने बन्दूक भरकर डल्ला से कहा, मैं इसके निशाने की परीक्षा करना चाहता हूं। तुम अपने किसी आदमी से कहो कि सामने खड़ा हो जाए ताकि देख सकूं कि यह बन्दूक कहां तक

कितनी ताकत से मार कर सकती है व इसका निशाना कितना ठीक बैठता है।

डल्ला गुरुजी की यह बात सुनकर हैरान रह गया। फिर अपने आदमियों से बोला, "हां,हां, आगे बढ़ो कोई व्यक्ति!"

पर किसी को भी आगे बढ़ने का साहस न हुआ। तभी गुरुजी ने देखा कि उनके दो शिष्य थोड़ी दूरी पर खड़े पगड़ी बांध रहे हैं। उन्होंने डल्ला से कहा, "अच्छा जाओ, अब उन दोनों से कहो कि तुम्हारे गुरु को एक व्यक्ति की आवश्यकता है, जिस पर वह बंदूक का परीक्षण कर सकें।"

यह सूचना मिलते ही वे दोनों शिष्य बिना अपनी पगड़ियाँ पूरी तरह बांधे, उसी अवस्था में ही भागे चले आए। "मुझ पर चलाइये गोली, मुझ पर चलाइये।" ऐसा कहते हुए वे एक दूसरे को परे धकेल कर आगे आने लगे।

डल्ला ये देखकर शर्मिन्दा भी हुआ और आश्चर्यचकित भी। गुरुजी ने बंदूक एक ओर रख दी और बोले, "डल्ला, हम ऐसे स्वयंप्रेरित बलिदानी वीरों के सहारे ही आनन्दपुर,चमकौर और मुक्तसर की लड़ाइयां लड़े हैं। तुम अपने जिन सैनिकों को वीर समझते हो,वे वास्तव में वीर नहीं हैं। वीर वही होता है जिसने प्राणों के मोह पर विजय प्राप्त कर ली हो। मेरे इन लोगों में वीरता है, समर्पण है। इसी वीरता और समर्पण से मैंने यवन-साम्राज्य की जड़ें हिला दी हैं। अब यह ऐसा महल है, जो बस गिरा, कि गिरा।"

और सचमुच ही गुरुजी की इस भविष्यवाणी के अनुरूप मुगल साम्राज्य कुछ ही वर्षों के बाद तहस-नहस होना शुरू हो गया और सन् १७६१ ई. तक यह साम्राज्य पूर्ण रूप से ध्वस्त होकर नामशेष हो गया।

o

प्रतिशोध की आग

'आप कौन हैं ?'

'वही जिसे तुम भली भांति पहचानते हो।'

"मैं किसे पहचानता हूं?"

"अपने आप से पूछो अपने ही मन में ध्यान करो।"

वैरागी माधोदास ध्यानमग्न हुआ। इसी ध्यानावस्था में उसने समस्त स्थिति का अवलोकन कर कुछ देर बाद आंखें खोलीं और बोला, "तो आप ही हैं गुरु गोविन्द सिंह ?"

"ठीक पहचाना तुमने।" गुरु जी मुस्कराये।

"आपके दर्शनों से मैं कृत-कृत्य हुआ।" माधोदास ने सहसा हाथ जोड़ दिए।

दोनों महापुरुषों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान लिया था। गुरुजी को सहज ही यह आभास हुआ कि यही व्यक्ति भविष्य मे मेरे महान उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उपयुक्त है। दोनों में खुले दिल से देश की परिस्थिति के विषय में विचार-विमर्श हुआ।

"तुम भविष्य की आशा हो वैरागी।" गुरु जी उस पर अपना स्नेहाशीर्वाद बिखेरते हुए बोले, "तुमसे हमें बहुत अपेक्षाएँ हैं। तुम्हें भारी उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है।"

"मैं आपका बन्दा (दास) हूँ गुरुदेव।" वैरागी उनके चरणों में नत-मस्तक हो गया। वैरागी माधोदास तपस्वी होते हुए भी तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों से काफी कुछ अवगत। अतः गुरुजी को उसे परिस्थिति का अधिक बखान नहीं करना पड़ा। माधोदास जानता था कि बादशाह औरंगजेब मजहबी उन्माद

की प्रतिमूर्ति है। उसे मालूम था कि औरंगजेब ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही उड़ीसा के सभी स्थानीय अधिकारियों को बुलाकर हुक्म दिया था कि पिछले १०–१२ वर्षों में बने सभी मन्दिर और मठ गिरा दिए जाएं और किसी भी पुराने मंदिर की मरम्मत न होने दी जाए। फिर उसने यह आदेश प्रसारित किया था (९ अप्रैल १६६९) कि हिन्दुओं के सभी मंदिर और विद्यालय नष्ट कर दिये जायें और उनकी धार्मिक शिक्षा आदि को पूरी तरह रोक दिया जाए। उसके विनाशकारी हाथ सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं के अति पूज्य मंदिरों पर भी आ पड़े थे। वैरागी को यह भी ज्ञात था कि औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया कर (२ अप्रैल १६७९) लगा रखा है।

गुरु गोविन्द सिंह के साथ आये शिष्यों में से एक भाई दया सिंह ने गुरु अर्जुन देव तथा गुरु तेग बहादुर की शहादत के बारे में तथा गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्रों के चमकौर युद्ध में मारे जाने एवं अन्य दो पुत्रों के सरहिन्द की दीवार में चुने जाने की हृदय–विदारक घटनाओं का भी वर्णन वैरागी के सम्मुख किया।

माधोदास ने जब यह विवरण तथा गुरु गोविन्द सिंह की वीरता एवं संघर्ष का विस्तृत वृत्तांत सुना तो वैरागी हो चुके होने के बावजूद उसके वीर राजपूती रक्त में जोश भर आया।

"वैरागी!" गुरु जी ने अवसर देखकर चोट की, "भला सोचों तो कि जब समाज के कोटि–कोटि बन्धु अत्याचारों की चक्की में पिस रहे हों, अन्याय के शिकार हो रहे हों तब ऐसी अवस्था में क्या तुम्हें उनका आर्तनाद अनसुना कर व्यक्तिगत मोक्ष–चिन्तन शोभा देता है ? समाज की बेबसी भरी आंखे तुम्हारी तरफ निहार रही हैं। क्या तुम भभूत रमाये अपनी धूनि में ही मस्त रहोगे ? अपनी माला को कुछ समय के लिए विश्राम दो। आज के युगधर्म की ओर ध्यान दो। अपने हाथों में पुनः खड्ग और धनुष बाण धारण करो। समाज को तुम्हारी आवश्यकता है। वैरागी! इस आवश्यकता की पूर्ति तुम्हीं को करनी है।"

गुरुजी के इन शब्दों ने जादू का काम किया। वैरागी गहन चिन्तन में डूब गया। उसके इस चिन्तन को और अधिक गति देने के लिए गुरु जी पुनः बोले, "छोड़ दो गोदावरी का यह सुरम्य–सुहाना तट, यह सुन्दर डेरा, यह योगाभ्यास, और जाओ उन आबादियों में जहां हैं अत्याचार–प्रपीड़ितों की चीखें–चिल्लाहटें और आहें। उनकी बेबसी का उपचार करो, अपनी ऋद्धि–सिद्धियों का उपयोग उन्हीं के कष्ट–निवारण के लिए होने दो। दुष्टों को मार भगाओ। पापियों को जड़ से उखाड़ दो।"

वैरागी माधोदास के जीवन में महान परिवर्तन ने जन्म लिया। यह उसके जीवन में दूसरा परिवर्तन था। पहला परिवर्तन तब हुआ था जब उसने एक हिरणी का शिकार किया था और उसके पेट से दो बच्चे निकलते देखे थे, जो उसकी आंखों के सामने ही तड़प–तड़प कर मर गये थे। इस दृश्य ने उसके कोमल हृदय को झकझोर दिया था। उन दिनों वह राजौरी (जिला पुंछ जम्मू–कश्मीर) में रहता था। वहीं उसका जन्म (२७ अक्टूबर, १६७०) एक राजपूत परिवार में हुआ था। बचपन से ही उसे शिकार का शौक था। तब उसका नाम लक्ष्मण देव था। शिकार की इस घटना से उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था और वह १६ वर्ष की आयु में ही घर से निकल पड़ा था। वह लक्ष्मण देव से माधोदास वैरागी बन गया। गोदावरी नदी के किनारे नांदेड़ पहुंच कर उसने यहीं अपना आश्रम बना लिया था। और अब गुरु गोविन्द सिंह के प्रभावी व्यक्तित्व, उनके संघर्षपूर्ण जीवन के आदर्श तथा सद् उपदेश ने उसके अंतःकरण में पुनः क्षात्र धर्म का भाव जागृत कर दिया।

उसके कानों में गुरुजी के यह शब्द बार–बार गूंजने लगे, "समाज को तुम्हारी आवश्यकता है। वैरागी ! इस आवश्यकता की पूर्ति तुम्हीं को करनी है।"

इन शब्दों ने कुछ ऐसा सम्मोहन– कार्य किया कि माधोदास गुरुजी के प्रति समर्पित होकर अपने वैराग्य को तिलांजलि देने को आतुर हो उठा। पुनः हाथ जोड़कर बोला, "आदेश दें, गुरुवर! मैं आपका बन्दा हूं, आपका

दास हूं। आप तो देश और कौम के रखवाले हैं। मुझे हुक्म कीजिए। यह बन्दा आपके आदेश का पालन करेगा। मैं प्रण करता हं कि सुकुमार साहिबजादों का वध करने वाले पापी यवनों का नाश अवश्य करूंगा। सरहिन्द की ईंट से ईंट बजा दूंगा।"

उसकी आंखें क्रोधावेश से लाल हो उठी थीं। मुख पर अपूर्व तेज चमकने लगा था। गुरुजी ने उसे आशीर्वाद दिया। बस उसी दिन से माधोदास 'बन्दा वैरागी' तथा 'बन्दा बहादुर' आदि नामों से सुविख्यात हो गया।

गुरुजी ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए कहा, 'अब तुम मेरा काम सम्भालो। मुगलों के स्वेच्छाचार पर घातक प्रहार कर हिन्दू-जाति को अन्याय के भार से मुक्त करो।' उन्होंने वैरागी को एक खड्ग और पांच बाण प्रदान किये तथा पच्चीस शिष्यों का एक जत्था उसके साथ देकर पंजाब की ओर रवाना किया। उन्होंने अपने सभी शिष्यों के नाम एक पत्र भी दिया कि "हमारा भेजा हुआ धर्म रक्षक वीर बन्दा बहादुर पंजाब में दुष्ट-दमन हेतु आ रहा है। सभी योद्धा उसका साथ दें और उसकी आज्ञाओं का पालन करें।"

बन्दा बहादुर ने घोषणा की कि अत्याचारियों को दंडित किया जायेगा। सिखों के जत्थों के जत्थे उसके झंडे तले इक्ट्ठे होने लगे। उसने पंजाब से दिल्ली की ओर जा रहे शाही खजाने को लूटकर अपने अभियान का श्री गणेश किया। लूट का माल साथियों में बांट दिया। उसकी ख्याति तथा सेना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

उसने समाना के नगर पर चढ़ाई (२६ नवम्बर १७०९) कर दी। साथ ही यह घोषणा की कि जो लूट का माल जिसके हाथ आएगा, उसका मालिक लूटने वाला ही होगा। नगर में खूब लूटमार हुई। तीन दिन तक समाना की ईंट से ईंट बजती रही। इस नगर पर प्रकोप का मुख्य कारण यह था कि अली हुसैन, जिसने गुरु गोविन्द सिंह के साथ धोखा करके उनसे आनन्दपुर छुड़ाया था, तथा गुरु के बच्चों के बारे में सरहिन्द के सूबेदार वजीर खां से कहा था कि "सांप के बच्चे सांप ही होते हैं," यहीं का रहने वाला था।

गुरु तेग बहादुर का घातक जलालुद्दीन भी इसी नगर में रहता था। यहां से वैरागी को जो सरकारी खजाना मिला, वह सारा सिपाहियों में बांट दिया गया। यह समाचार इधर-उधर फैला तो हजारों की संख्या में युवक आकर वैरागी की फौज में भर्ती हो गये। इसके बाद गुरुपुत्रों के कातिल सामल बेग और बरसल बेग को भी कत्ल कर दिया गया।

तदन्तर सरहिन्द के सूबेदार वजीरखां का कत्ल करने की घोषणा की गई। कुंजपुरा पर चढ़ाई की गई। यह वजीर खां की जन्मभूमि थी। उसने इसकी रक्षा के लिए पाँच सौ सवार भी भेजे किंतु वे बन्दा बहादुर की सेना की ताब न ला सके और मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। इस शहर को बिल्कुल मटियामेट और तबाह कर दिया गया।

"सढौरा का शासक उस्मान खां बडा अत्याचारी है। हम हिन्दुओं को शव जलाने तक नहीं देता। हमारे घरों के सामने जान-बूझकर गौ-हत्या करता है। गलियां गौ-रक्त से सनी रहती हैं। इसी ने दशम पातशाह की सहायता करने वाले पीर बद्धूशाह को कत्ल किया था।" कुछ हिन्दुओं ने बन्दा वैरागी को यह सूचना दी।

बंदा ने यह सुनते ही अपना घोड़ा मुस्लिम अत्याचार के इस केन्द्र सढौरा की तरफ मोड़ दिया। वहां के नवाब ने मुसलमानों को इक्ट्ठा करके मुकाबला किया। दिन भर युद्ध चलता रहा। अन्धेरा होते-होते बंदा बहादुर की सेना ने हल्ले के साथ शहर में प्रवेश किया। भयंकर मार-काट मची। लाशों के अंबार लग गये। बंदा ने उस्मान खां को पकड़कर वृक्ष से बांध दिया और उसे जीते जी जला दिया। मुखलिस गढ़ का किला वैरागी के अधीन हो गया। उसने इसका नाम बदलकर लोहगढ़ रखा और बहुत सा गोला बारूद यहां एकत्र किया। वैरागी की चारों ओर धाक जम गई। हिन्दुओं को ऐसा प्रतीत होने लगा कि उनकी रक्षा के लिए भगवान स्वयं वैरागी का रूप धारण करके आये हैं। हिन्दू युवक बड़ी प्रसन्नता से उसकी सेना में शामिल होने लगे। दूसरी ओर वही मुसलमान जो हिन्दुओं को सदा भयभीत करते

रहते थे, वैरागी द्वारा प्रतिकार स्वरूप किये जा रहे कृत्यों से भीतिग्रस्त होकर स्वयं कांपने लगे।

एक अवसर पर बहुत से मुसलमान भेंटें लेकर वैरागी के पास आये और आश्रय मांगा। वास्तव में उन के मन में मैल था। अन्दर से उन्होंने षड्यंत्र करने की सोच रखी थी। अवसर पाकर उन्होंने सूबेदार को एक पत्र भी लिखा, "हमने वैरागी को हाथ में कर लिया है। यह केवल कपट से ही मारा जाएगा।"

दैवयोग से यह पत्र वैरागी के हाथ लग गया। उसने उन सबको बुलाकर पूछा कि शरण में आये किसी धोखेबाज से क्या व्यवहार करना चाहिए? सभी ने कहा कि ऐसे व्यक्ति को मृत्यु दंड मिलना चाहिए। तब वैरागी ने उक्त पत्र पढ़कर उन्हें सुनाया। सब हैरान रह गये कि उनकी गुप्त योजना का वैरागी को पता कैसे लग गया। रोते हुए वे सब क्षमा माँगने लगे। वैरागी ने उनका इलाज पहले ही सोच रखा था। उसने कहा, ठीक है जितने लोग इस डेरे के अंदर समा जायेंगे, उन्हें क्षमा कर दिया जाएगा। सभी डेरे के अन्दर घुस गये। तब उसने उन सब का बड़ी निर्दयता से कत्ल करवा दिया। इस घटना से इस जगह का नाम 'कत्लगढ़ी' प्रसिद्ध हुआ। वैरागी ने आगे के लिए निश्चय कर लिया कि वह यवनों का कभी विश्वास नहीं करेगा।

अब वीर वैरागी ने सरहिन्द पर चढ़ाई करने की घोषणा कर दी। इस समय उस के पास आठ हजार पैदल और चार हजार सवार हो गये थे। सरहिन्द वही स्थान है, जहां गुरु गोविन्द सिंह के दो छोटे बच्चे किले की दीवार में चुने गये थे। वैरागी का हृदय एक समय से प्रतिशोध की आग से जल रहा था। उधर वजीर खां ने भी तैयारी शुरू कर दी। शाही फौज के अतिरिक्त उसने आम मुसलमानों को भी विशेष रूप से उकसाया। वैरागी अपने शूरवीर सैनिकों को लेकर बड़ी तेजी से बढ़ा चला आ रहा था। वजीर खां ने सरहिन्द से दस मील आगे बढ़कर चप्पड़ चिड़ी स्थान पर वैरागी का सामना किया।

बहुत दिनों से प्रथा यह हो गई थी कि मुसलमान ही आक्रमण किया करते थे। यह प्रथम अवसर था कि प्रतिकार-प्रेरित बन्दा वैरागी मुस्लिम

शासकों पर हमले करने में पहल कर रहा था। इससे पठानों के दिल दहल गये थे। चप्पड़ चिड़ी के युद्ध में सिख सेना ने शूरवीरता के भरपूर जौहर दिखाये किन्तु शाही तोपों की प्रलयंकारी मार से वह घबरा गई। दूरी पर खड़ा वैरागी युद्ध देख रहा था। सिखों के घबराने का दृश्य देखकर उसने घोड़े पर सवार होकर अचूक बाण वर्षा शुरू कर दी। उसके बाण बिजली और आग बरसाते थे। इनकी मार से शाही सेना के तोपची एक-एक कर धराशायी होने लगे। तत्पश्चात् वैरागी ने स्वयं युद्धस्थल पर पहुंचकर हाथ में तलवार ली और शत्रु पर टूट पड़ा।

उसके बारे में यह बात आम प्रसिद्ध थी कि उसने भूतप्रेत काबू किये हुए हैं। यह बात उसके बहुत काम आई और मुसलमान सैनिक उसे देखते ही भूतप्रेत के भय से इधर-उधर भागने लगे। सिख सेना भी अब संभल कर तथा उत्साहित होकर मुस्लिम सेना पर पिल पड़ी। मुस्लिम सेना सिर पर पैर रखकर भाग खड़ी हुई। सूबेदार वजीर खां का हाथी भी भागने लगा। वह हाथी से नीचे गिर गया और सिखों ने उसे अपना कैदी बना लिया।

वैरागी की सेना ने बड़े जोश के साथ सरहिन्द में प्रवेश किया (२४ मई, १७१०)। जो सामने आया, कत्ल कर दिया गया। सिख सिपाहियों ने शहर में सात दिन तक भयंकर लूटमार की। गुरु पुत्रों के सरहिन्द की दीवार में चुने जाने की घटना से जनमानस पहले से ही आंदोलित था। अतः अब प्रतिशोध का अवसर आने पर जोश से भरे सिख सैनिकों ने वहां की सभी महल-माड़ियां नष्ट-भ्रष्ट कर दीं। कैद किये गये सभी अपराधी बंदा बहादुर के सामने पेश किये गये। उसने एक-एक करके सबके सब तलवार के घाट उतार दिये।

आठवें दिन वजीर खां को बंदा बहादुर के सामने पेश किया गया। उसे जूतों के स्थान पर परिवार सहित बैठाया गया। तत्पश्चात् उसके पैरों में रस्सा बांधकर सरहिन्द की गलियों में घुमाया गया। गली-गली में उस पर धिक्कार पड़ी। अन्त में उसे जीवित ही आग में जलाकर उसके अक्षम्य

पापों का दंड दिया गया।

इन घटनाओं के समाचार बादशाह बहादुर शाह तक पहुंचे तो वह क्रोध से तड़प उठा। कहां तो वह गुरु गोविन्द सिंह जी को अपने अन्यायी व क्रूर अधिकारियों को दंडित करने के आश्वासन देता रहा था, और कहां अब स्वयं ही उनका प्रबल पक्षधर बन कर बंदा वैरागी के दमन के लिए उद्यत हो गया। उसके झूठे आश्वासनों की कलई खुल गई। परन्तु बन्दा ने अब परिस्थितियां बदल दी थीं। बादशाह के सभी मुख्य सूबेदार बन्दा से थर-थर कांपने लगे थे। वह मुगलों के लिए भयंकर हौआ बन गया था।

बन्दा बहादुर ने आठ वर्षों में अत्याचारी शासकों के होश ठिकाने लगा दिये। वह जो-जो प्रदेश जीतता जाता, अपने सरदारों में बांटता जाता। वह स्वयं किसी भी राज्य लिप्सा में लिप्त हुए बिना, स्वतंत्र विचरता रहा। इस प्रकार बन्दा बहादुर ने अपने अनेक सरदारों में जो इलाके बांटे, उन्हीं से इन सरदारों के द्वारा बाद में सिख मिसलों की नींव पड़ी।

स्थिति यह थी कि सन् १७१० के सितम्बर मध्य तक माछीवाड़ा से करनाल तक बन्दा वैरागी की पताका फहराने लगी। यदि कुछ दिन बादशाह बहादुर शाह दक्षिण में और रह जाता तो पूरे उत्तरी भारत में वैरागी की हकूमत होती।

सन् १७१४ में वैरागी ने अमृतसर में एक बड़ा भारी दीवान लगाया। सरदारों को जागीरें दीं। नई सेना की भर्ती शुरू की। तत्पश्चात पटियाला, गुरुदासपुर, पठानकोट के इलाकों पर अधिकार जमाया। गुरुदासपुर में एक दुर्ग बनवाया। उसने पंजाब के अन्य अनेक भागों को भी अपने राज्य में मिला लिया और एक प्रभावी व महत्वपूर्ण ताकत के रूप में उभरा।

पंजाब का इतिहास-लेखक मुहम्मद लतीफ, वैरागी के सम्बन्ध में लिखता है, "इसने हजारों मुसलमानों का वध किया, मस्जिदें और खान्काहें (मकबरे) मिट्टी में मिला दीं, घरों में आग लगा दी और स्त्रियों और बच्चों की हत्या की। लुधियाना से लेकर सरहिन्द तक समस्त प्रदेश साफ कर दिया। पहले

वह सरहिन्द आया। गुरु गोविन्द के बच्चों के प्रतिकार में नगर को आग लगा दी। बालक या स्त्री का कोई विचार न रखते हुए सब वासियों को कत्ल कर डाला। मृतकों को कब्रों से निकाल कर चीलों और कौओं को खिलाया। सांराश यह कि जहां-कहीं वह गया, तलवार से काम लिया। इसी कारण मुसलमान इसे 'यम' कहने लगे।

इतने कम समय में एक सन्त ने बिना किसी विशेष युद्ध सामग्री के, केवल अपनी धुनर्विद्या, प्रबल निश्चय तथा शौर्य के बल पर पंजाब के एक बडे हिस्से पर अधिकार कर लिया और नालागढ़, नाहन आदि के राजाओं को भेंट सहित उपस्थित होने पर विवश किया।

इतिहास लेखक भाई परमानन्द जी के शब्दों में, "वैरागी यद्यपि साधु था, फिर भी ऐसा जंगी नेता भारतवर्ष में पहले कभी न उत्पन्न हुआ था। जहां कहीं भी युद्ध होता था उसमें विजय प्रायः वैरागी की व्यक्तिगत वीरता के कारण होती थी। ज्यों ही थोड़ी देर के लिए वह अनुपस्थित होता, मुसलमान फिर उठ खड़े होते और सिख उनके आगे मारे-मारे फिरते। वह लौटता तो अवस्था तुरंत बदल जाती।

ऐसा विलक्षण योद्धा था वीर वैरागी, जिसने आतताइयों को एक बार कंपा कर रख दिया, हिन्दुओं के विरुद्ध चल रही अत्याचार की आंधी का रुख सरासर पलट कर रख दिया और गुरु गोविन्द सिंह की 'चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं इस उक्ति को सही अर्थों में जीवन्त कर दिखाया। चिरकाल से आक्रमित हो रही हिन्दू जाति आक्रामक बन कर खड़ी हो गई।'

o

कट-कट कर मरने में आनन्द

अनेक क्षेत्र जीत लेने के बावजूद वैरागी ने स्वयं को राज सिंहासन पर आरूढ़ न किया। उसके स्वभाव से वैराग्य भाव पूर्ण रूप से लुप्त न हुआ था। वह विजय तो प्राप्त करता किन्तु राज्य शक्ति अपने हाथ में न रखना चाहता था। इसलिए विजित क्षेत्रों में अपने सरदारों को नियुक्त कर स्वयं पर्वतों की ओर भ्रमण अथवा साधना के लिए चला जाता।

उसकी अनुपस्थिति में मुस्लिम सूबेदारों की ओर से सिखों पर आघात शुरू हो जाते। तब वैरागी पुनः आकर युद्ध करता और आक्रांताओं को खदेड़ देता। यही क्रम बार-बार दोहराया जाता। पंजाब में शांति तभी स्थापित रह सकती थी यदि वैरागी स्थायी रूप से समस्त विजित प्रदेशों की हकूमत की बागडोर अपने हाथ में लेता। परन्तु ऐसा करने से वह स्वभाव-वश बचता रहा। परिणाम यह हुआ कि यह कमी निरन्तर बनी रही।

बादशाह बहादुरशाह फरवरी, १७१२ ई. में चल बसा। उसका पोता फर्रुखसीयर अपने चाचा जहांदार शाह को मारकर (फरवरी, १७१३) स्वयं सिंहासन पर बैठा। उसने देखा कि रणांगण में तो वीर वैरागी को जीतना मुश्किल है। अतः उसने अपने एक हिन्दू मंत्री रामदयाल को माता सुन्दरी (गुरुगोविन्द सिंह की विधवा) के पास भेंट देकर भेजा और कहा कि "वैरागी अकारण ही प्रजा को तंग कर रहा है। अब वह स्वयं गुरु बनना चाहता है। बादशाह तो सिखों को जागीरें देने को तैयार हैं। आप पत्र लिखकर बन्दे को सर्वनाश से रोकें।"

माता बादशाह फर्रुखसीयर की चाल में आ गई। उनके साथ भाई मान सिंह और भाई सदकी सिंह रहा करते थे। उन्होंने माता को बहुत समझाया

कि फर्रुखसीयर की चालों में न आयें। वैरागी को किसी प्रकार का पत्र न लिखें। न तो वह गुरु का सिख है और न उस पर आपका कोई जोर ही है। परन्तु माता ने बादशाह की इच्छानुसार वैरागी को इस भाव का पत्र लिख भेजा कि तुम गुरु के सच्चे सेवक साबित हुए हो। तुमने पंथ की बड़ी सेवा की है। अब बादशाह जागीरें देने को तैयार है। अतः लूटमार बंद कर दो।"

पत्र पढ़कर वैरागी के मुख से अनायास ही निकला, "माई इन दुष्ट तुर्कों के छल को नहीं समझतीं।" आवेश में वैरागी ने उत्तर में लिखा, "आपका पत्र लिखना व्यर्थ है। आप सिख हो, मैं वैरागी साधू हूं। मैं कभी गुरु का सिख नहीं रहा। गुरु गोविन्द सिंह मुझे मिले अवश्य थे। उन्होंने मुझे कहा था कि मेरे बच्चों की हत्या का प्रतिकार करो। मैंने उन्हीं के आदेश से गुरु पुत्रों के बध का बदला लिया है। मैंने अपनी तलवार और धनुष बाण से इतना प्रदेश जीता है। न मैं किसी से जागीर लेना चाहता हूँ और न ही किसी का उपकार मानता हूं। जब तक हमारे हृदयों में गुरु पुत्रों की स्मृति शेष हैं, हम अपने निश्चय को कभी निर्बल न होने देंगे। आप हमें जागीरों का लालच देकर मुसलमानों के अधीन करना चाहती हैं। यह उचित नहीं है। इन्होंने ही आपके वंश को समाप्त किया है। क्या आपको ज्ञात नहीं कि इन्होनें गुरु साहिब से कितने वचन किये थे किन्तु अन्त में धोखा ही दिया। आप कृपया इन के धोखे में न आवें।"

बादशाह के मंत्रियों ने वैरागी के इस पत्र के आधार पर सिखों को वीर वैरागी के विरुद्ध भड़काया कि वह तो गुरु का सिख ही नहीं है। माता सुन्दरी की ओर से सिख सरदारों और पंथ को पत्र लिख दिया गया कि 'आप में से जो गुरु गोविन्द सिंह का सिख है, वह वैरागी का साथ न दे, क्योंकि वह अपने आपको सिख नहीं मानता।'

इस पत्र से प्रभावित होकर यद्यपि वैरागी से विमुख हुए कुछ सिखों ने अब 'तत्त खालसा' नाम का अपना अलग दल बना लिया था, तथापि वैरागी ने शाही सेना को अपने बल पर जबरदस्त मात दी। लाहौर के सूबेदार अस्लम

खां को बटाला के पास पराजय का मुंह देखना पड़ा। वैरागी ने सोचा कि विजय के प्रभाव को स्थायी करने के लिए लाहौर को जीतना अति आवश्यक है। जब तक लाहौर पर अधिकार न किया जाएगा, शत्रु का दमन स्थायी रूप से नहीं हो सकता। अतः उसने सेना की बागडोर लाहौर की ओर मोड़ दी। उधर बादशाह ने 'तत्त खालसा' को अपने साथ मिला लिया। युद्ध क्षेत्र में अपने मुकाबले में अपने ही इन साथियों को आया देखकर वैरागी को सख्त सदमा पहुंचा। उसका दिल ही टूट गया। वर्षों तक जिनके संग रहकर रणस्थल में तलवार चलाई थी, आज उन्हीं पर वह आघात कैसे करता ? निराश एवं चिंतित मनः स्थिति में वह गुरुदासपुर वापस आ गया।

इस घटना ने पंजाब का इतिहास ही बदल कर रख दिया। लाहौर मुसलमानों के हाथों से आजाद न हो सका। वैरागी ने 'तत्त खालसा' को समझाने का भरसक यत्न किया। किन्तु सफल न हुआ। लाचार उसने कर्तव्यपथ पर अकेले ही चलने का निश्चय किया। पंजाब में पंजाबियों का राज्य स्थापित करने के लिए उसने कलानौर पर चढ़ाई की। नवाब फतेहदीन रुपये और घोड़ों की भेंट लेकर आया तथा अधीनता स्वीकार कर ली। बन्दा बहादुर ने स्याल कोट भी बिना किसी प्रतिरोध के जीत लिया। इसी प्रकार वजीराबाद तथा गुजरात के क्षेत्र भी जीते। कहीं कोई उसके सम्मुख न टिक सका।

वैरागी की इन सफलताओं से पुनः फर्रुखसीयर चिंतित हो उठा उसने सोचा कि यदि वैरागी को रोका न गया तो वह शीघ्र ही लाहौर पर भी अधिकार कर लेगा। इसलिए उसने अब्दुल समद खां तूरानी को तीस हजार सैनिकों के साथ वैरागी के विरुद्ध भेजा। साथ ही अन्य अफसरों को भी उनकी फौजों सहित उसकी सहायतार्थ रवाना किया। वैरागी ने गुरुदासपुर के पास लोहगढ़ किले में अपना मुख्य केन्द्र बनाया। किले के चारों ओर खायीं खोदकर उसमें आस पास की नहरों से पानी भर दिया।

दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। किंतु सिख सैनिकों को इस संघर्ष में काफी नुकसान उठाना पड़ा। वे पीछे धकेले जाकर लोहगढ़ में आ रुके।

यहां सुरक्षा के प्रबन्ध के अलावा युद्ध की सब सामग्री भी मौजूद थी। शाही सेना ने किले को घेर लिया। यह घेरा अप्रैल १७१५ को शुरू हुआ और आठ मास तक चलता रहा। बाहर से आतायात बिल्कुल बंद हो गया। अंदर की रसद समाप्त हो गई। स्थिति संकटपूर्ण बन गई।घिरे हुए सिख भूख-प्यास से तंग आकर घोड़ों और गधों को ही मार कर खाने लगे। इन कष्टों से तंग आकर बन्दा बहादुर के विश्वासपात्र भी उसे छोड़ने लगे। यह लोग बंदा वैरागी को छोड़कर जंगलों और उजाड़ गांवों में जा तो छुपे परन्तु शाही सेना ने उन्हें वहां भी ढूंढ़-ढूंढ़ कर यमलोक पहुंचा दिया।

पेट की आग बुरी होती है। इसे बुझाने के लिए वैरागी के साथ सिख सैनिक घास और वृक्षों की छाल तथा सूखी हुई टहनियों को कूट-कूटकर आटे की जगह फांकने को विवश हो गये। कुछ लेखक तो यह भी कहते हैं कि उन्होंने इन्हें अपनी- अपनी जांघों के गोश्त को काटकर भूनते और खाते हुए भी देखा।

ऐसी स्थिति कब तक चल सकती थी ? भूख के मारे अभक्ष्य वस्तुओं को खाने से उनके शरीर दुर्बल तथा अस्वस्थ हो गये। अधिकांश को पेचिश लगी, खून के दस्त आने लगे। वे मरने लगे। मुर्दों के सड़ रहे शरीरों से पैदा हो रही बदबू ने उस स्थान को रहने के अयोग्य बना दिया। जो बचे, वे जर्जर ढांचे मात्र रह गये तथा इतने अशक्त हो गए कि वे बंदूकें तक न चला सकते थे। अब अधिक समय तक शत्रु का मुकाबला करना उनके लिए असम्भव हो गया। अंततः बन्दा को अपने साथियों सहित आत्मसमर्पण के लिए विवश होना पड़ा (१७ दिसम्बर १७१५)। सेनापति अब्दुल समद खां ने इन सबको दोष-मुक्त मानकर छोड़ देने की प्रार्थना बादशाह से करने का वचन दिया। किन्तु उसके इस आश्वासन ने पर जब किले के दरवाजे खोले गये तो बन्दा वैरागी और उसके साथियों को पकड़ कर कैदी बना लिया गया। शाही सैनिक भूखे भेड़ियों की भांति उन नीम-मुर्दा सिखों पर टूट पड़े। अब्दुल समद खां ने उनमें से दो-तीन सौ को हाथ-पांव बांधकर मुगल और पठान सिपाहियों के हवाले कर दिया, जिन्होंने उन्हें तलवार के घाट

उतार दिया। बड़ा खुला मैदान खून से भरी एक तश्तरी की भांति दिखाई देने लगा। मुर्दा सिखों के पेट यह देखने के लिये चीर डाले गये कि कहीं इन्होंने सोने की मोहरें न निगल रखी हों। फिर उनके सिर काटकर तथा भूसा भरकर भालों पर टांग दिये गये।

बन्दा वैरागी और शेष बचे सिखों को लाहौर ले जाया गया। यद्यपि उन्हें बांधकर कैदी बना लिया गया था, फिर भी शत्रु में यह भय बना हुआ था कि वैरागी कहीं अपनी सिद्धियों और अदृष्ट शक्तियों के द्वारा रास्ते में उड़कर भाग न जाए। इसके साहसी मुगल अफसर ने अपनी सेवा पेश करते हुए यह कहा कि मुझे इसके साथ बांध दिया जाये। यदि वैरागी उड़ने की कोशिश करेगा तो मैं अपना खंजर इसके पेट में भोंक दूंगा। पांव में बेड़ियां और गले में जंजीर डालकर उन्हें कसकर रखा गया था। बंदा को इस तरह जकड़ कर एक लोहे के पिंजरे में चार स्थानों पर बांध कर रखा गया। यह पिंजरा एक हाथी पर रखा गया। दो मुगल अफसर भी बंदा के उस पिंजरे के आगे-पीछे उसी हाथी पर सवार रहे, ताकि कहीं वह उड़ न जाए या भाग न जाए।

अगले दिन प्रातः काल अब्दुल समद खां ने बंदा वैरागी और उनके साथ के ७०० कैदियों को अपने पुत्र जकरिया खां और कमरुद्दीन खाँ के कड़े पहरे में लाहौर से दिल्ली भेज दिया।

रास्ते में तरह-तरह की विपत्तियां सहता हुआ यह जलूस (२७ फरवरी, १७१६) दिल्ली पहुंचा।उन्हें काजी के सामने पेश किया गया। काजी ने कैदियों से कहा कि यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लो तो तुम्हारी प्राण रक्षा हो सकती है। वीर कैदियों ने इसे अपना अपमान समझा और निर्भीक स्वर में कहा, प्राण लेने-देने वाला तो परमात्मा है। तू कौन होता है ? हमने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अत्याचारियों का अन्त करने का यत्न किया है। अब भी यदि अवसर मिले तो बाकी दुष्टों को भी ठिकाने लगा देंगे।

इस पर उन सभी के लिए प्राण दंड का आदेश दिया गया। बादशाह

फर्रुखसीयर के हुक्म से ५ मार्च, १७१६ को चांदनी चौक में सिख कैदियों का कत्ल शुरू हुआ। प्रतिदिन सौ कैदियों को जेल से निकाल कर कत्लगाह में कतारें लगाकर बैठा दिया जाता। वहां हर एक को यह कहा जाता कि यदि वह हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम कबूल कर ले तो उसे छोड़ दिया जाएगा। परन्तु आखरी दम तक एक भी ऐसा न देखा गया, जिसने प्राण-मोह में पड़कर अपने धर्म को त्यागना स्वीकार किया हो। वे हँसते-हँसते मृत्यु का आह्वान करते। कई दफा तो वे एक दूसरे से पहले बलिदान होने के लिए आग्रह करते। पूरा सप्ताह यह कत्ल जारी रहा और इस प्रकार उन सभी सात सौ कैदियों के सिर तन से जुदा कर दिये गये।

कत्ल के बाद उनके धड़ एक ढेर में फेंक दिये जाते और रात को गाड़ियों पर ले जाकर वृक्षों पर टांग दिये जाते ताकि मुस्लिम आतंक को और अधिक बढ़ाया जा सके और यह जितलाया जा सके कि इस्लाम स्वीकार न करने वालों की क्या दुर्गति होती है।

मिर्जा मुहम्मद हार-सी आंखों देखा वर्णन बयान करते हुए लिखता है कि "जब मैं कत्ल आरम्भ होने के दूसरे दिन यह तमाशा देखने गया तो क्या देखता हूं कि उस दिन के कटे हुए धड़ काफी दिन चढ़े तक खून और धूल में लथपथ धूप में बाहर पड़े हुए थे।" खाफी खान ने इस संबंध में एक अनुपम घटना का भी वर्णन किया है। वह कहता है, इन सिखों में एक छोटी आयु का युवक भी था, जोकि एक विधवा का इकलौता पुत्र था, तथा जिसका विवाह हुए कुछ ही दिन हुए थे। उस माता ने बादशाह से प्रार्थना की कि उसका पुत्र सिख नहीं है। अतः उसे छोड़ दिया जाए। बादशाह ने उसकी रिहाई का हुक्म दे दिया। उसकी मां परवाना लेकर कत्लगाह में पहुंची। उस समय उस युवक की गर्दन पर तलवार चलने वाली थी। शाही परवाना देखकर कोतवाल ने उस युवक को बाहर निकाल दिया और कहा कि तुम्हें छोड़ दिया गया है। परन्तु उस युवक ने जाने से इंकार कर दिया और जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। उसने कहा कि मेरी मां झूठ बोलती है। मैं दिल और जान से अपने गुरु के श्रद्धालुओं और सेवकों में से हूं। मुझे शीघ्र ही वहां

पहुंचाया जाए जहां मेरे गुरुभाई गये हैं। बूढ़ी मां की चीख-पुकार और सरकारी अफसरों के समझाने-बुझाने का उस बच्चे पर कोई प्रभाव न हुआ। दर्शकों की हैरानी उस समय और भी बढ़ गई जब वह बहादुर बच्चा अपनी मां से यह कहता हुआ कि "मां, तू मुझे स्वर्ग की सीढ़ी से उतार कर नरक की नाली में मत डाल, मुझे इस रक्त-वैतरणी में स्नान करने दे, जल्लाद की ओर बढ़ गया और शहादत पाने के लिये बड़े धैर्य के साथ अपनी गर्दन उसके सामने झुका दी। जल्लाद की तलवार उठी और उसे अमर कर गई।

स्पष्ट है कि हिन्दुत्व की रक्षा के लिए संघर्षशील यह लोग कितने अधिक भावना-प्रेरित थे। इन वीरों ने अत्यन्त बेपरवाही के साथ मौत का स्वागत किया। यही नहीं, अपितु शहादत का अमृत पीने के लिए वे एक दूसरे से आगे बढ़कर बड़ी उत्सुकता प्रकट करते थे।

जिन दिनों यह कत्ल हो रहे थे, ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक प्रतिनिधि फर्रुखसीयर के दरबार में आया हुआ था। उसने यह खूनी दृश्य अपनी आंखों से देखे और अपनी १७ मार्च, १७१६ की चिट्ठी में फोर्ट विलियम के गवर्नर को इसका वृतान्त कथन करते हुए अंत में लिखा, 'यह बात कोई कम ध्यान देने योग्य नहीं है कि सिख किस सब्र और हिम्मत के साथ ईश्वर-इच्छा को कबूल करते हैं और आखिर तक यह नहीं देखा गया कि कत्ल होने वालों में से किसी एक ने भी अपने धर्म को त्यागा हो।"

इन कत्लों के बाद तीन मास तक उन सभी लोगों का पता लगाने की कोशिश की जाती रही, जिन्होनें बंदा वैरागी को उसके युद्धों व अन्य कार्यों में मदद दी थी। आखिर १९ जून, १७१६ को वैरागी को दरबार में लाया गया। उसके चारों तरफ भालों पर उसके ७०० साथियों के सिर लटकाये गये थे। काजी ने वैरागी को प्राणदंड की आज्ञा सुनायी।

बादशाह ने पूछा, "तुम कौन सी मौत मरना चाहते हो ?" दरबारियों में से एक ने पूछा, "तुमने इतने ज्ञानी-महात्मा होते हुए भी ऐसे भयंकर अत्याचार क्यों किये ?"

"तुम जिस तरह मारना चाहते हो, मारो।" बंदा बहादुर ने निर्लिप्त-निर्भीक योगी की भांति उत्तर दिया, "मेरे लिए मृत्यु कोई चीज नहीं है। यह पुनर्जन्म का दूसरा नाम है। मैं परमात्मा के हाथ में पापियों-अत्याचारियों को दंड देने का साधन था। मुझे संतोष है कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। निरीह बच्चों पर जुल्म करने वालों तथा निःशस्त्र व निर्दोष हिन्दुओं पर अत्याचार करने वालों को समाप्त करके मैं संसार से विदा हो रहा हूं। मेरे लिए जीवन और मृत्यु दोनों बराबर हैं। पर मुझे गर्व है कि गुरु तेग बहादुर के कातिल तथा गुरुपुत्रों के प्राण हरने वाले दुष्ट और उनके सहयोगी मेरे हाथों नारकीय दण्ड पा चुके हैं। जिस राजशक्ति के अधीन यह पाप हुए थे, उसकी जड़ें मैंने हिलाकर रख दी हैं। अब वह अंतिम सांसों पर है। बादशाह! तू जो कुछ और जैसा कुछ चाहे कर। मैं इसके प्रति निश्चिन्त हूं।"

बादशाह के हुक्म पर वैरागी को विचलित करने के लिए उसका चार वर्षीय बच्चा उसके सामने लाया गया। वैरागी से कहा गया कि वह उस बच्चे को छुरी से कत्ल करे। परन्तु क्या कोई पिता ऐसा कर सकता है? तब जल्लाद ने एक छुरे से बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसका तड़पता हुआ दिल निकाल कर बंदा बहादुर की छाती पर दे मारा। बन्दा ईश्वरेच्छा के सम्मुख नतमस्तक सब कुछ चुपचाप देखता रहा, जैसे कि फर्रुखसीयर से ऐसा अपेक्षित ही हो। फिर लोहे की गरम-गरम सीखों से उसके शरीर को दागा गया। पहले उसकी दायीं आंख निकाली गई, फिर बाईं। उसके बाद उसका दायां पैर काटा गया। दोनों हाथ शरीर से जुदा कर दिये गये। इसके बाद लाल-लाल गरम लोहे की चिमटियों से उसकी बोटियां नोची गईं। फिर उसका सिर काट कर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। बन्दा ने इन तमाम कष्टों को शांतिपूर्वक सहन किया और अभूतपूर्व शहादत पायी। ऐसी भी लोकोक्ति है कि वैरागी को इतने कष्ट देने के बाद उसके शेष अस्थि-पिंजर को हाथी के पांव तले रौंदवा कर समाप्त कर दिया गया।

जब वैरागी की बोटियां काटी जा रही थीं, तो वह वीर विदेह सा शांत था। इस पर नजीबुद्दौला ने पूछा, "इतने कष्ट पाकर भी तुम प्रसन्न-चित्त कैसे

हो?"

"यह सुख-दुःख तो शरीर का विषय है। इनका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं आत्मा हूं। शरीर छूट रहा है। इसने आज नहीं तो कल छूटना ही था। शरीर को मारा जा सकता है, पर आत्मा को कोई नहीं मार सकता। अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए कर्मयोगियों को कट-कट कर मरने में भी आनन्द ही आता है।" वैरागी ने सहज भाव से उत्तर दिया।

वैरागी का जीवन -कार्य और बलिदान, दोनों अद्वितीय हैं। भारतीय आकाश का वह एक ऐसा उज्ज्वल नक्षत्र है, जिसने घनान्धकार में अपूर्व तेजस्विता के साथ चमक कर देश और जाति को आलोकित किया तथा आज भी मार्गदर्शन कर रहा है।

वैरागी की शहादत के बाद सिखों की आंखें खुलीं। उन्हें अब इस बात का एहसास हुआ कि वे क्या कर बैठे हैं। वैरागी की कर्तव्यपरायणता का अब उन्हें भान हुआ। अब्दुल समद खां तूरानी अब लाहौर का शासक बन गया था। वह विध्वंस के नये-नये उपाय सोचने लगा। बादशाह फर्रुखसीयर की तत्त-खालसा के साथ हुई संधि की शर्तों को उसने उठाकर ताक पर रख दिया। वह संधि तो केवल उन्हें मूर्ख बना कर यवनों का स्वार्थ-सिद्ध करने के लिए थी। भोला-भाला खालसा उसकी चाल को न समझ सका।

तूरानी ने पहले तो सिखों की जागीरें जब्त कर लीं। फिर उनकी जमीनों का लगान दुगुना कर दिया। जिन सिखों को नौकर रखा गया था, उनके वेतन भी आधे कर दिये। फिर उसने किसी सिख को चोरी के और किसी को खून के अपराध में गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। सिखों के सिर काट कर लाने वालों को पुरस्कृत किया जाने लगा। गुरुद्वारे उजड़ गये। सिखों पर अत्याचारों का नया दौर प्रारम्भ हो गया।

o

खूनी बसंत

पश्चिमी पंजाब के प्रसिद्ध शहर स्यालकोट के एक खत्री पुरी परिवार में श्री भागमल के घर एक बालक ने सन् १७१९ में जन्म लिया। बच्चे की माता का नाम था गौरां। बालक का नाम हकीकत राय रखा गया। पांच वर्ष का होने पर उसे एक विद्वान ब्राह्मण के पास हिन्दी-संस्कृत पढ़ने के लिए भेजा गया। छोटी आयु में ही उसने अच्छी धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर ली। हिन्दुत्व के संस्कार उसमें कूट-कूट कर भर गये। उन दिनों की प्रथा के अनुसार उसकी शादी ११ वर्ष की छोटी आयु में ही बटाला के एक सिख किशन सिंह की पुत्री लक्ष्मी देवी के साथ हो गई। शादी के बाद पिता ने उसे फारसी, जो उस समय की राजभाषा थी, पढ़ने के लिए मुसलमान मौलवी के पास भेज दिया। वहां और भी बच्चे पढ़ते थे, पर वे सब के सब मुसलमान थे।

एक दिन मौलवी कहीं बाहर गया हुआ था। लड़के शोर मचाने लगे। हकीकत ने मना किया। इस पर सभी मुसलमान लड़के मिलकर उसे तंग करने लगे। उन्होंने हिन्दू धर्म की भी निंदा शुरू कर दी और मां भगवती दुर्गा के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया। धर्मी हकीकत इस राष्ट्रीय अपमान को सहन न कर सका और उत्तेजित होकर उसने भी मुसलमानों के पैगम्बर की लड़की बीबी फातिमा के लिए वही शब्द दुहरा दिए।

इतने में मौलवी वहां आ गया। मुसलमान लड़कों ने हकीकत राय को शिकायत की कि इसने बीबी फातिमा को गाली दी है। कोई हिन्दू लड़का इतना साहस कर सकता है, यह मौलवी के लिए गजब की बात थी। हकीकत ने बड़ी दिलेरी के साथ सारा मामला सच-सच मौलवी को बता दिया और कहा कि "इन लड़को ने उस देवी को गालियां दी हैं, जिसके दरबार में

बादशाह अकबर भी नंगे पांव चलकर ज्वालामुखी आया था। कोई भी स्वाभिमानी हिन्दू उस आदि शक्ति के प्रति ऐसे अपमानभरे शब्द बरदाश्त कैसे कर सकता है ?" किन्तु मौलवी ने हकीकत की सभी बातें अनसुनी कर दीं। उसने हकीकत को थप्पड़ लगाने शुरू कर दिए। फिर लातें मार-मारकर बेहोश कर दिया।

होश आने पर हकीकत ने न्याय की दुहाई दी। कहा कि 'जिन्होंनें पहले देवी की शान में अपशब्द कहे हैं, उन्हें तो आपने कुछ नहीं कहा। सरासर पक्षपात करके आप उल्टा मुझे ही दोषी ठहरा कर मार रहे हैं।' पर मौलवी ने एक न सुनी। उसके सिर पर मजहबी जनून का भूत सवार था। हकीकत राय को पकड़कर वह काजी के पास ले गया।

काजी ने हकीकत से कहा,"तुम ने बहुत बड़ा जुर्म किया है। इसका एक ही प्रायश्चित है कि तुम इस्लाम कबूल कर लो। नहीं तो बीबी फातिमा को गाली देने के अपराध में कत्ल कर दिए जाओगे। तलवार से तुम्हारा सर कलम कर दिया जायेगा।"

हकीकत मुस्कराया और बोला,'मैं अपने प्राणों से भी प्यारे हिन्दू धर्म को तिलांजलि नहीं दे सकता। मौत का डर दिखाकर आप मुझे विचलित नहीं कर सकते क्योंकि असली हकीकत को तो आपकी तलवार काट ही नहीं सकती। मेरा धर्म कहता है कि आत्मा अमर है।'

एक बालक के मुख से ज्ञान और स्वाभिमान की यह बातें सुनकर काजी हैरान रह गया।

"अगर तुम मुसलमान हो जाओ तो तुम्हें इतना धन दिया जाएगा कि सारी उम्र ऐश कर सकोगे।" काजी ने उसे लालच देना चाहा।

"मैं मुसलमान बनने को तैयार हूं, यह ऐश के साधन भी मन्जूर कर लूंगा, यदि..."

काजी बहुत खुश हुआ। मन ही मन कहने लगा, "बच्चा है ना, आखिर फिसल ही गया।"

"तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा कोई रिश्तेदार तुम्हारी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देख सकेगा। बोलो, मुसलमान बनने को तैयार हो ना?"

"बशर्ते कि..."

'कह तो दिया कि तुम्हारा कोई भी रिश्तेदार तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।' काजी बोला।

"इस बात का मुझे डर नहीं काजी साहिब कि मेरे रिश्तेदार मुझे तंग करेंगे ?"

"तो फिर यह 'बशर्ते कि -बशर्ते कि' की, क्या रट लगा रखी है?"

"मैं केवल यह चाहता हं कि आप मुझे विश्वास दिला दें कि मुसलमान बन जाने के बाद मैं कभी मरूंगा नहीं, हमेशा जिन्दा रहूंगा।"

'यह कैसे हो सकता है? जो इस दुनिया में आया है, वह एक-न-एक दिन तो मरेगा ही।'

'मौत ने अगर आना ही है तो फिर उससे डर कैसा ? मुसलमान बन जाने पर भी मैं अमर तो बन नहीं जाऊंगा, यह खुद आपने माना है, हजूर!'

काजी बाल हकीकत के इस तर्क पर हक्का-बक्का रह गया। वह अपने आपको पराजित अनुभव कर रहा था। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। बस उसने कुरान की शरा का नाम लेकर हकीकत को कैद में डाल दिया। हथकड़ियों से जकड़ दिया। कोड़े भी लगवाये।

यह समाचार हकीकत के माता-पिता को मिला तो वे भागे-भागे आये। काजी के पैरों पर सिर रखकर क्षमा मांगी और कहा,"यह बच्चा है। इसकी तरफ से हम क्षमा मांगते हैं। गलती से इसके मुंह से अपशब्द निकल गये हैं। इस पर रहम कीजिए।"

मगर काजी का दिल नहीं पसीजा। बोला, "इसके दोष की एक ही सजा है-मौत!हां, अगर यह मुसलमान हो जाए तो उसे क्षमा किया जा सकता है।"

माता ने अपने प्यारे लाडले को गले से लगा लिया और समझाने की

कोशिश की, "बेटा, माफी मांग लो। मुसलमान होकर ही सही, हमारी आंखों के सामने जिन्दा तो रहोगे। तुम्हारा मुखड़ा देखकर मैं भी जीवित रह सकूंगी।"

पर वीर हकीकत तो मृत्यु में ही अमरत्व के दर्शन कर रहा था। मां से बोला, "माता! तूने ही तो मुझे प्राचीन गाथायें सुनाकर धर्म के मर्म को समझाया था। मैं इस पवित्र कार्य से कदापि पीछे नहीं हटूंगा। इस्लाम स्वीकार कर नरक कुंड में कदापि नहीं जाना चाहूंगा। धर्म के लिए एक प्राण तो क्या, यदि मुझे ऐसे हजारों प्राण भी निछावर करने पड़ें तो भी प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूं। यह पाठ तुम्हारी गोदी में ही तो बैठकर सीखा है, मां! आज तुम झूठे मोह में पड़कर यह क्या कह रही हो?"

मां की आंखों में आंसू छलछला आये। वह निरुत्तर थी। शहर के सभी हिन्दू इकट्ठे होकर नगर प्रमुख अमीर बेग के पास गये। प्रार्थना की कि हकीकत अभी बच्चा है। नासमझ है। उसका अपराध क्षमा कर दिया जाए। बाल सुलभ क्रोधावेश में उसके मुंह से ऐसे शब्द निकल गये हैं। इस पर अमीर बेग ने स्वयं कुछ भी टिप्पणी न करते हुए मुकदमा लाहौर के मुख्य काजी के पास भेज दिया।

इस दौरान हकीकत राय के धर्म प्रेम और अडिग विश्वास की बात सब जगह फैल गई। हकीकत को लाहौर ले जाते हुए रास्ते में जो-जो गांव पड़ते थे, वहां के हिन्दूधर्मी वीर हकीकत के दर्शन करने के लिए आने लगे। हकीकत को अपने साथ ले जा रहे काजी से वे सभी न्याय की प्रार्थना करते। परन्तु वह सब अरण्य रोदन के समान वृथा सिद्ध होता। हिन्दुओं की भावनाओं की चिन्ता किसे थी?

उन दिनों दिल्ली में बादशाह मुहम्मद शाह का राज्य था। पंजाब का सूबेदार था खान बहादुर जकरिया खां। सर्वत्र मुस्लिम धर्मान्धता का ही बोलबाला था। न्याय-अन्याय के फैसले का आधार बस यही था कि इस्लाम किस तरह फैलाया जा सकता है और इस्लामी आतंक किस तरह बढ़ाया जा सकता है।

मुकदमा लाहौर के मुख्य काजी की अदालत में पेश हुआ। उसने हकीकत

से पूछा, "तुमने पैगम्बरे-इस्लाम की लड़की की शान में गुस्ताखी क्यों की?"

"मुसलमान लड़कों ने मेरी आराध्या देवी दुर्गा भवानी को गाली दी थी। मैंने भी जवाब में वही शब्द प्रयोग किये, जो उन्होंने देवी की शान में प्रयोग किये थे। मुझे यदि दोषी करार दिया जा रहा है तो उन मुसलमान लड़कों को भी वहीं दंड मिलना चाहिए।"

"तुम काफिर हो," काजी बोला, "और काफिर के लिए ऐसे जुर्म की सजा मौत है। लेकिन मैं तुम पर रहम करता हूं। तुम्हारी जान बच सकती है अगर तुम मुसलमान बन जाओ।"

"यह तो मैं पहले भी सुन चुका हूं। यह न्याय नहीं है। घोर अन्याय है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता।"

काजी वीर हकीकत की इस स्पष्टोक्ति पर क्रुद्ध हो उठा। बोला, "अंजाम भी जानते हो? अभी तुम्हारा सर कलम कर दिया जाएगा।"

काजी के इस कथन पर हकीकत ठहाका मारकर हंस दिया। बोला-

"छू तक नहीं सकता मुझे हाथ फना[१] का।"

बेसूद दिलाते हो मुझे खौफ कजा[२] का।

होता है हकीकत को भी मरने का कहीं गम?

कटता है तो कट जाए। मुझे सर का नहीं गम।।

"काजी साहिब! प्रभु ने मुझे हिन्दू घराने में पैदा किया है और आपको एक मुस्लिम के घर में। इसलिए आपका मुझे मुसलमान बनने के लिए जबरदस्ती मजबूर करना भगवान के काम में दखल देना है। भूलिये मत जो कोई भी भगवान के कार्य में हस्तक्षेप करता है, काफिर वही है, मैं नहीं।"

"बको मत। तुम हद से बढ़ते जा रहे हो।" काजी क्रोधपूर्वक चिल्लाया, "मैं तुम्हारी जबान खिंचवा लूंगा। तुम्हारी आंखें निकलवा दूंगा। जल्लाद, तलवार सम्भालों।"

"नहीं, नहीं काजी साहिब" "हकीकत के माता-पिता से रहा न गया।

हाथ जोड़ते हुए आगे बढ़कर बोले, "यह नादान है। नहीं जानता कि क्या कह रहा है । आप हमें इसे समझाने का एक मौका और दें....."

"मां, मेरा निश्चय अटल है", हकीकत बीच में ही बोल उठा, "पिताजी, काजी को फिर से स्पष्ट शब्दों में बता दीजिए कि मैं मौत से नहीं डरता–

फानी [३] है मेरा जिस्म, मेरी रूह अमर है।
मैं मौत से बाला[४] हूं, मुझे इसकी खबर है।
मैं धर्म को छोड़ूंगा न इस जिस्म की खातिर।।
मुंह निश्चय से मोड़ूंगा न इस जिस्म की खातिर।।
कोई भी मेरे सामने लोभ आ न सकेगा।
जन्नत का भी लालच मुझे फुस्ला न सकेगा।
सर काट लो मेरा जो तुम्हें लाग है सर से।
छोड़ूंगा न मैं धर्म को तलवार के डर से।।

हकीकत की पत्नी भी इस अवसर पर अदालत में मौजूद थी। उसने भी अपने हाथों की मेंहदी दिखाकर अपने सुहाग का वास्ता दिया। आंखों में आंसू भर कर विनती की, "मुझे विधवा होने से बचा लीजिए, पतिदेव!"

"आंसू बहा रही हो, पगली? मैं धर्म से पतित हो जाता, तब तो तू आंसू बहाती अच्छी लगती। तेरा मस्तक तो गर्व से उन्नत होना चाहिए कि तेरा पति अपने धर्म पर अडिग खड़ा है।" हकीकत ने उसे जितलाया।

अंत में वह घड़ी आ ही गई, जब साक्षात राक्षस की तरह भयानक जल्लाद ने मुख्य काजी के हुक्म से तलवार के एक ही वार से बालक की कोमल गर्दन धड़ से अलग कर दी। सभी ओर त्राहि–त्राहि मच गई। निरपराध अबोध बालक की हत्या पर चारों ओर मातम छा गया।

यह सन् १७३४ की वसंत पंचमी का दिन था। सारे शहर में हड़ताल हो गई। लाहौर से लगभग पांच किलोमीटर दूर रावी नदी के किनारे कोट

खोजेशाह गांव के निकट चंदन की चिता बनाकर वीर का दाह संस्कार किया गया। बाद में वहां समाधि बनाई गई।

भारत–विभाजन के बाद धर्मी वीर हकीकत की लाहौर में बनी उस समाधि की मिट्टी दिल्ली में लायी गई तथा वीर की समाधि तैयार करवायी गई, जहां अब हर वर्ष वसंत पंचमी के पवित्र त्यौहार पर मेला लगता है और जनसमूह हिन्दुत्व की खातिर हर कुर्बानी देने की प्रेरणा प्राप्त करता है।

वीर हकीकत का बलिदान अलौकिक है, दिव्य है। तलवार हाथ में लेकर युद्ध क्षेत्र में मरना आसान है। किन्तु माता–पिता, पत्नी तथा अन्य सगे–सम्बन्धियों द्वारा धर्मच्युत होने का आग्रह किये जाने पर भी धर्म–पथ न छोड़ना अद्वितीय व प्रेरक अडिगता का परिचायक है। वीर हकीकत ने हँसते–हँसते अपना बलिदान देकर जातीय जीवन में नवचेतना का संचार कर दिया।

शहीद की विधवा लक्ष्मी देवी अपने पिता के घर बटाला आ गई और अपने माता–पिता को दिलासा देने के बाद सती हो गई। आज भी बटाला में सती की समाधि पर वसंत पंचमी के दिन प्रतिवर्ष भारी मेले का आयोजन होता है।

(१) विनाश (२) मृत्यु (३) नाशवान (४) ऊँचा।

o

भाई मणि सिंह की शहादत

भाई मणि सिंह श्री हरि मन्दिर, अमृतसर के तीसरे ग्रन्थी थे। पहले-पहल यह सेवा बाबा बुड्ढा जी को प्राप्त हुई थी। उनके बाद यह उत्तरदायित्व भाई गुरुदास जी ने निभाया और तत्पश्चात भाई मणि सिंह जी ने।

भाई मणि सिंह जितने साहसी तथा धैर्यवान थे, उतने ही विद्वान भी थे। गुरु गोविन्द सिंह जी के आनन्दपुर से निकलते समय (२१ दिसम्बर, १७०४) गुरु पत्नियों,-माता साहिब कौर तथा माता सुन्दरी, को सुरक्षा के साथ दिल्ली में आपने ही पहुंचाया था। गुरु गोविन्द सिंह जी ने जब गुरु ग्रन्थ साहिब की नई बीड़ तैयार की तो उसका लेखन कार्य भी भाई मणि सिंह ने ही किया था। गुरु ग्रन्थ साहिब जिस रूप में आज उपलब्ध है, वह रूप उन्होंने ही दिया। इससे पहले गुरु ग्रन्थ साहिब का रचना क्रम गुरु क्रम से था। किन्तु भाई जी ने इसे राग-क्रम से कर दिया और सभी रागों की पहचान के लिए कौन-सी रचना किस गुरु की है, उन्हें महला नम्बर दे दिए।

इसी प्रकार आज जो 'दशम ग्रंथ' हमारे सामने है, उसका संकलन भी भाई मणि सिंह ने ही अनेक सिख विद्वानों को साथ लेकर किया था।

वे दिन ऐसे थे कि मुगल शासक हिन्दुओं के जानी दुश्मन बने हुए थे। मंदिरों, गुरुद्वारों में जाने वाले धार्मिक जनों को वे मुख्य रूप से तंग करते थे। इसी प्रकार अमृतसर के हरिमंदिर में दर्शनों के लिए आने वाले केशधारी तथा सहजधारी, सभी हिन्दुओं को मुगल शासकों की ओर से परेशान किया जाता, जिससे उन श्रद्धालुओं में से अधिकांश तो निराश ही वापिस लौट जाते। इससे भाई मणि सिंह के हृदय पर भारी चोट लगती।

जहां कुछ समय पहले हजारों श्रद्धालु आते थे, भजन-कीर्तन करते थे, अब वही पवित्र स्थान सर्वथा सुनसान रहने लगा था। भाई मणि सिंह यह देखकर अत्यन्त दुखी होते।

"कम से कम वर्ष में एक बार तो गुरु के सभी शिष्यों को यहां हरिमंदिर में दर्शनों के लिए एकत्रित होना ही चाहिए। इसके लिए चाहे जो हो, शासकों से अनुमति लेनी ही होगी।" वे विचारने लगे।

उन्होंनें सोचा कि "दीवाली का शुभ पर्व शीघ्र आने वाला है। बस यही शुभ अवसर ठीक रहेगा। वीर श्रेष्ठ बन्दा वैरागी लछमन दास की शहादत के बाद से मुस्लिम अत्याचारों की आंधी इस जोर से चल रही है कि जहां कहीं कुछ सिख इकट्ठे हुए दिखाई देते हैं, सशस्त्र मुगल सिपाही उन पर चढ़ दौडते हैं। इस पवित्र त्योहार के निमित्त सबको एकत्रित करने का अवसर तो प्राप्त होगा।"

उन्होंने निश्चय कर लिया, "दीवाली का उत्सव अवश्य मनाया जाएगा। अत्याचारी रावण का नाश करके इसी दिन श्रीराम अयोध्या में पधारे थे। गुरु हरि गोविन्द भी कारा से मुक्त होकर इसी दिन अमृतसर आये थे। भला हम यह शुभ दीपोत्सव क्यों न मनायें? शासकों से अनुमति मांगनी ही चाहिए। देखते हैं, वह क्या उत्तर देते हैं।"

"दीवाली हमारा पवित्र धार्मिक उत्सव है" मणि सिंह ने अमृतसर के मुगल शासक महमूद खां से कहा,"आप हमें इस अवसर पर दस दिनों के मेले की विधिवत अनुमति दे दें ताकि मुगल सैनिक मेले में आने वालों को मार न दें और न ही परेशान करें।"

"लेकिन इसमें तो बागी सिख भी आ जायेंगे,"महमूद खां बोला,"खैर! मैं लाहौर के सूबेदार से पूछकर आपको सूचित करुंगा।"

महमूद खां ने सूबेदार जकरिया खान को सारा हाल लिख भेजा। साथ ही यह इशारा भी दिया कि "इस मेले में बागी सिख भी आ जायेगे। उन्हें यहां सामूहिक रूप से गिरफ्तार करने में आसानी रहेगी।"

सूबेदार ने जवाब भेजा कि "अगर मणि सिंह दीवाली के बाद हमारे खजाने में पांच हजार रूपये जमा कराने का वायदा करें तो उसे मेले की अनुमति दी जा सकती है।"

उत्तर भारत में अमृतसर की दीवाली बहुत प्रसिद्ध थी। इस दिन पंजाब, सिंध, सीमा प्रांत तथा कश्मीर आदि से बहुत बड़ी संख्या में श्रद्धालु अमृतसर आया करते थे और हरिमन्दिर दीपमाला से जगमगा उठता था। यूं तो सारे नगर की ही सजावट दर्शनीय होती थी किन्तु हरिमन्दिर की शोभा निराली हुआ करती। दर्शकों श्रद्धालुओं की भीड़ इतनी हुआ करती कि तिल धरने की भी जगह न रहती। सभी तरफ सिर ही सिर दिखाई दिया करते थे। किन्तु अब कुछ वर्षों से परिस्थितियां विपरीत हो गई थीं। किसी त्योहार पर कोई रौनक नजर न आती थी।

अब (सन् १७३८) भाई मणि सिंह को यह उत्सव मनाने की इजाजत मिल गई तो यह समाचार चारों ओर आग की तरह फैल गया। लोगों में आनन्द की लहर दौड़ गयी। सभी प्रसन्न थे कि इस अवसर पर दूर-दूर के अपने बिछुड़े भाइयों से मिलने का अवसर मिलेगा। सब के दिल कमल की भांति खिल गये। बड़े उत्साह के साथ अमृतसर सजाने की तैयारियां होने लगीं। पर दूसरी ओर कुछ और ही योजनायें बन रही थीं। लाहौर के सूबेदार जकरिया खान ने अमृतसर के हाकिम को व्यक्तिगत मशवरे के लिये बुलाया।

"महमूद खां!" जकरिया खान ने पूछा, "काफिरों की दीवाली में कितने दिन बाकी हैं?""

"हुजूर अभी चार दिन हैं।""महमूद खां ने जवाब दिया, "लेकिन शहर में इकट्ठे होना अभी से शुरू हो गया है। काफिर दूर-दूर से आ रहे हैं।"

"बागियों पर तो पूरी नजर है ना?"" जकरिया खान ने पूछा।

"उनकी चिन्ता न कीजिए, हुजूर महमूद खां ने उत्तर दिया, हमारे कई सिपाही भेस बदल कर उन के बीच घूम-फिर रहे हैं। अभी तक बागियों का एक जत्था भी नहीं आया। इत्तिला मिली है कि शाम को सिखों का एक जत्था आएगा। हम हर लम्हे की खबर रख रहे हैं।"

'देखो' जकरिया खान ने आदेशात्मक स्वर में कहा, "उस जत्थे को हर हालत में गिरफ्तार कर लो। ऐसा न हो कि उन्हें हमारी नीयत का पता चल जाए और वे भाग खड़े हों। कल सुबह होते ही फौज जरूरी अहकाम के साथ लाहौर से चल देगी। ध्यान रहे हम पैसे की निस्बत वहां इकट्ठे होने वाले बागी सिखों का लहू बहता देखने को ज्यादा उतावले हैं।"

महमूद खां आवश्यक निर्देश लेकर उसी रात अमृतसर लौट आया। योजनानुसार मुगल फौज अगले ही दिन लाहौर से अमृतसर के लिए निकल पड़ी। बागी सिखों की एक बड़ी संख्या साधुओं के वेश में अमृतसर आ रही थी। उन्होंने मुगलों की चाल को भांप लिया। जिस समय मुगल सेना अमृतसर क्षेत्र में प्रवेश कर रही थी। तब यह साधु पास के जंगल में कोई उपाय सोच रहे थे।

लोगों ने ज्यों ही मुगल फौज को अमृतसर क्षेत्र में देखा, सर्वत्र आतंक छा गया। सबने अनुमान लगा लिया कि मुगलों ने कोई न कोई षड्यंत्र रचा है। फिर क्या था! देखते ही देखते मेला जुड़ने से पहले ही उजड़ गया। जिसने जहां यह समाचार सुना, वहीं से उल्टे पांव लौट पड़ा।

भाई मणि सिंह ने भी यह सब देखा, सुना। वे अमृतसर के शासक के पास पहुंचे। पूछा, यह आपने क्या किया है?"

"क्या हुआ मणि सिंह?" महमूद खां बड़े शांत स्वर में बोला, जैसे कुछ जानता ही न हो।

"आपने यह सारी फौज किसलिए बुला ली है?" भाई जी ने कहा, "सभी यात्री तो डर के मारे वापस लौट चले हैं।"

"लेकिन यह फौज तो हमने आपकी हिफाजत के लिए बुलायी है।" महमूद खां ने बात बनानी चाही।

"हमें इसकी जरूरत नहीं।" भाई जी ने कहा, "आप फौज को कृपया वापस भेज दें।"

"फौज वापस नहीं जा सकती।" पास खड़े सेनापति ने कड़क कर कहा।

भाई मणि सिंह निराश होकर लौट आये। अधिकांश यात्री जा चुके थे। जो बाकी थे, वह भी जा रहे थे। दीवाली फकी पड़ गई। तथापि केशधारी साधुओं की कुछ टोलियाँ आईं। इनमें एक टोली बुड्ढा दल की थी, जिसमें वयोवृद्ध सिख शामिल थे। अन्यों में पांच प्रमुख टोलियां तरुण दल की भी थीं। हरिमन्दिर में अपनी-अपनी श्रद्धानिधि अर्पित कर वह चुपचाप नगर से बाहर निकल गयीं। मुगल सैनिकों को न उनके आने की खबर हुई न जाने की।

दीवाली के बाद मणि सिंह से पांच हजार रुपये मांगे गये। उन्होंने उत्तर दिया, "मगर चढ़ावा तो चढ़ा ही नहीं। मेला तो भरा ही नहीं। रुपया कहां से दिया जाए? शर्त तो यह थी कि हमें स्वतंत्रता से १० दिन तक उत्सव मनाने दिया जाएगा। लेकिन आपने फौज मंगा ली और यात्री वापस चले गये।"

"हम कुछ नहीं जानते।" महमूद खां झल्ला कर बोला, "हमें बस पांच हजार रूपया चाहिए।"

भाई जी कुछ समय तक विचार करते रहे। रुपया न देने से क्या होगा, यह उन्हें मालूम था। फिर यकायक उनका चेहरा चमक उठा, जैसे उन्होंने कुछ निश्चय कर लिया हो।

"रुपया तो हमारे पास है नहीं।" उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा।

"जानते हो, इसका नतीजा क्या होगा? महमूद खां ने गुस्से से कहा।"

भलीभाँति जानता हूं। भाई जी ने शांत भाव से उत्तर दिया, "मुझे उसकी चिंता नहीं।"

"काफिर! तुझे सजाए-मौत मिलेगी।" महमूद खां गरजा।

"आप मेरे शरीर को समाप्त कर सकते हैं, आत्मा को नहीं।"

"तेरे बदन की बोटी-बोटी काटी जाएगी।" महमूद खां ने होंठ चबाते हुए कहा। फिर अपने सैनिकों से सम्बोधित होकर बोला, "कैद कर लो काफिरों के इस मुखिया को।" भाई मणि सिंह को बन्दी बनाकर जकरिया खान के पास लाहौर भेज दिया गया। वहां भी स्वाभिमानी भाई जी ने खान को निर्भयतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा कि "मेला लगता, चढ़ावा आता तो मैं आपको रुपये अवश्य देता। परन्तु आपकी फौजों के अमृतसर क्षेत्र में पहुंचने के कारण ही मेला नहीं

लग सका। मेला न लग सकने का कारण आप स्वयं हैं। इसलिए आपका रुपया मांगना सर्वथा अनुचित है। न ही मेरे पास इतना रुपया है कि मैं आपको दे सकूं।"

परन्तु वहां औचित्य और न्याय की बात कौन सुनता था? अपनी चाल को विफल हुआ देख जकरिया खान पहले ही गुस्से से पागल हुआ बैठा था। भाई जी की खरी-खरी सुनकर उसके तन-बदन में आग लग गई। उसने उन का एक-एक अंग काट-काटकर जुदा कर देने का हुक्म दिया। काजियों ने भाई के सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि "यदि तुम इस्लाम कबूल कर लो तो तुम्हारी जान बख्शी जा सकती है।" किन्तु भाई जी ने ऐसा कोई सुझाव सुनने से ही इन्कार कर दिया। बोले, "यह देह तो अपने जन्म से ही अनित्य है। सदा रहने वाली नहीं है। इसके मोह में पड़ कर मैं भला अपने प्यारे धर्म का परित्याग कर अपयश का भागी क्योंकर बन सकता हूं?"

सारे लाहौर में यह समाचार बिजली की भांति फैल गया। शहर में जितने हिन्दू रहते थे, सबने मिलकर पांच हजार रूपये जुटाये और भाई जी को छुड़ाने चले। किन्तु भाई जी ने उन्हें रोक दिया और कहा कि "मैं रुपया देकर अपने आपको छुड़ाना नहीं चाहता।"

जकरिया के आदेश के अनुसार जल्लादों ने लाहौर नगर के वध-स्थल, जो बाद में 'शहीदगंज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, पर ले जाकर भाई जी के शरीर के प्रत्येक हिस्से को वहशियाना ढंग से टुकड़े-टुकड़े काटते हुए उन्हें शहीद कर दिया। कितना असहाय हो चुका था यह समाज कि सबके देखते-देखते दुष्टों ने एक प्रमुख महापुरुष पर यह अमानुषिक अत्याचार ढाया। यह घटना सन् १७३८ ई. की दीपावली के लगभग एक मास बाद की है।

भाई मणि सिंह की शहादत ने निर्जीव पड़े हिन्दू समाज के दिल में भी आग सी लगा दी। उधर जकरिया खान ने अपनी गश्ती सेनायें और अधिक सक्रिय कर दीं। उसका दमनचक्र और अधिक तेजी से घूमने लगा।

o

मस्सा खान रंगड़ का अंत

"जो कोई किसी सिख की गिरफ्तारी के लिए उपयोगी सूचना देगा, उसे दस रुपये का इनाम दिया जाएगा। सिखों के सिर काट कर लाने वाले हर व्यक्ति को पचास रुपये प्रति सिर के हिसाब से पुरस्कार मिलेगा। किसी एक जीवित सिख को पकड़ लाने पर अस्सी रुपये दिए जायेंगे।" केशधारी हिन्दुओं को समूल नष्ट करने के लिए प्रतिबद्ध लाहौर के सूबेदार खान बहादुर उर्फ जकरिया खान ने सर्वत्र यह घोषणा करवा दी।

उल्लेखनीय है कि उस समय के अस्सी रुपये आज के लगभग पचास हजार रुपयों के बराबर थे। यह पुरस्कार काफी आकर्षक थे। इन का लाभ उठाने के लिये लगभग सारे का सारा मुस्लिम समाज ही सिखों के विनाश हेतु तत्पर हो कमाई करने में जुट गया।

कई मुस्लिम जमींदारों ने तो रुपया कमाने की धुन में सिखों के सिरों के छकड़ें ही भरकर भेजने शुरू कर दिये। जकरिया खान के सिपाही भी गांव-गांव घूम कर सैकड़ों सिखों को पकड़ लाते और फिर उन्हें लाहौर की घोड़ों की मण्डी में लाकर शाही फरमान के अनुसार सार्वजनिक रूप से कत्ल कर दिया जाता। इससे उस स्थान का नाम 'शहीदगंज' ही विख्यात हो गया।

इस प्रकार जकरिया खान ने सभी सम्भव बर्बरतापूर्ण उपायों द्वारा सिखों को पंजाब, विशेषतः अमृतसर के क्षेत्र से समाप्त-प्राय कर दिया। बचे हुए सिख शिवालिक की पहाड़ियों, लक्खी जंगल तथा राजस्थान के रेतीले इलाकों की ओर जा छिपने के लिए विवश हो गये। मुगल शासक समझते थे कि उन्होनें अब सिखों को निर्मूल कर दिया है। किन्तु यह वीर अनेक

बार अपने छिपने के ठिकानों से निकल कर मुगल सेना पर आक्रमण करते और शाही खजाना लूटते हुए अपने अस्तित्व तथा सामर्थ्य का परिचय समय-समय पर अवश्य देते रहते। यद्यपि वे अत्यधिक विकट परिस्थितियों से दो-चार थे, तथापि मुख्य समाज हिन्दू-समाज से उन्हें जीवन रस निरन्तर प्राप्त हो रहा था। यहां तक कि पंजाबी हिन्दू परिवारों में यह प्रथा ही बन गयी कि अपने बड़े बेटे को वे सिख पंथ को अर्पित करते तथा इसमें आत्म-संतुष्टि ही नहीं, गौरव का भी अनुभव करते। अतः वे जुझारू सिख सभी प्रकार की आपदाओं की कसौटी पर हर तरह से खरे उतरते रहे, मृत्यु का आलिंगन करने में भी कभी पीछे न हटे।

इन्हीं दिनों फारस (ईरान) के नादिर शाह ने हिन्दुस्थान पर आक्रमण किया। उसने सारा उत्तरी पंजाब रौंद डाला। जकरिया खान ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। सन् १७३९ ई. के प्रारम्भ के महीनों में नादिरशाह ने दिल्ली लूटी। वापसी पर उसने मैदानी इलाकों की गरमी से बचने का निर्णय लिया। इसके लिए उसने शिवालिक की पहाड़ियों का उत्तरी मार्ग चुना। इन्हीं पहाड़ियों में सिखों के कुछ जत्थे अपने दिन गुजार रहे थे। उन्होंने इस आक्रमणकारी और लुटेरे की ही सेना को लूटने का फैसला किया। उसकी सेना के आखिरी भाग पर धावा बोलकर वे उसका लूट का बहुत-कुछ सामान छीन ले गये। इन मुट्ठी भर लोगों के इस साहसिक कार्य को देखकर नादिरशाह को बड़ी हैरानी हुई। उसने अपनी सेना को लाहौर में पड़ाव डालने का आदेश दिया। लाहौर के सूबेदार जकरिया खान से उसने पूछा, "यह कौन लोग हैं, जिन्होंने मेरे आगे बढ़ने में यह अवरोध उत्पन्न करने का यत्न किया है? ऐसा दुःसाहस करने वाले यह शरारती तत्व कौन हैं?"

"यह उन फकीरों का एक टोला है," जकरिया ने जवाब दिया, "जो अपने गुरु के सरोवर की वर्ष में दो बार यात्रा करते हैं। वहां स्नान करने के बाद वे न जाने कहां लुप्त हो जाते हैं।"

"वे रहते कहां हैं?" नादिरशाह ने पूछा।

"इनके घोड़ों की जीने ही इनके घर हैं।"

"तब तो सावधान रहो", नादिरशाह बोला, "ऐसी स्थिति में तो वह दिन दूर दिखाई नहीं देता, जब तुम्हारी जगह यह लोग राज्य सम्भाल लेंगे।"

नादिरशाह के मुख से यह शब्द सुनकर जकरिया और अधिक सावधान हो गया। उसने सिखों के विरुद्ध अपने अभियान को और ज्यादा तेज करने का निश्चय किया। उसने सिखों की हत्या के लिए पुरस्कार बांटने के अपने अभियान को पुनः आरम्भ कर दिया। हजारों सिख कत्ल करवा डाले।

उसने एक कठोर कदम और उठाया। उसने दरबार साहिब, अमृतसर पर कब्जा कर लिया। इसके आसपास सैनिक चौकियां बिठा दीं, जो किसी भी केशधारी अथवा सहजधारी हिन्दू को इस पवित्र स्थान की ओर जाने से रोकती थीं।

उसने दरबार साहिब तथा आसपास के सारे क्षेत्र को मंडियाली के मस्सा खान रंगड़ के आधिपत्य में दे दिया, जो केशधारी हिन्दुओं को पकड़ने और नष्ट करने में सर्वाधिक सक्रिय था। जकरिया के इशारे पर मस्सा खान ने दरबार साहिब के पवित्र क्षेत्र को अस्तबल (अश्वशाला) में बदल दिया। उसने हरिमंदिर में अपनी चारपाई डाल ली और उस पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ाया करता। मद्यपान करते और वेश्यायें नचवाते हुए उसने यह पवित्र स्थान विविध दुराचारों का अड्डा बना डाला। श्री हरिमंदिर साहिब के इस अपमानपूर्ण दुरुपयोग का समाचार पंजाब से पलायन कर जयपुर (राजस्थान) में जा बसे सिखों को मिला। इनमें एक था भाई महताब सिंह, जोकि अमृतसर के निकटवर्ती गांव मीराकोट का निवासी था। उसे इससे काफी चोट पहुंची।

"तुमने पवित्र हरिमंदिर का यह अपमान होते सुना, तो भी तुम जीवित हो और यह समाचार दूसरों को देते फिर रहे हो? मस्सा रंगड़ को वहीं क्यों न समाप्त कर दिया? क्या उस क्षेत्र में कोई भी सिख नहीं बचा?" महताब सिंह ने समाचार-वाहक से प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

'नहीं', समाचार-वाहक बोला, "प्राण रक्षा के लिए राजस्थान भाग आने

वालों की अपेक्षा अधिक स्वाभिमानी वहां कोई सिख नहीं है।"

भाई महताब सिंह अच्छे कद-काठ का बहादुर युवक था। समाचार लाने वाले का यह व्यंग्य उसे बिच्छू की तरह डंक मार गया। वह तत्काल उठ खड़ा हुआ। अपनी तलवार उठाई और बोला, "ठीक है, मैं जाऊँगा। इस तलवार से मस्सा रंगड़ का सिर काट कर यहां ले आऊँगा।"

'माड़ी कम्बों की' के निवासी सुखा सिंह ने उसके साथ चलने की पेशकश की। धर्म युद्ध के यह दोनों मतवाले अपने घोड़ों पर सवार होकर अमृतसर की ओर चल पड़े। अमृतसर के निकट एक स्थान पर रुक कर उन्होंने मुसलमानों का वेश धारण कर लिया। दो थैलों में मिट्टी के टूटे बर्तनों के गोल-गोल ठीकरें बनाकर भर लिये और अपने घोड़ों पर एक-एक थैला अपने आगे इस प्रकार रख लिया, जैसे वे कोई मुसलमान लम्बरदार हों और अपने इलाके का भूमिकर अदा करने के लिए जा रहे हों।

दोनों अगस्त, १७४० में अमृतसर पहुंच गये। वे हरिमंदिर की परिधि में दाखिल हो गये। सरकारी पहरेदारों से उन्होंने कहा कि हम अपने इलाके का लगान देने के लिए आये हैं और जल्दी ही वापिस भी लौटना चाहते हैं।

उन्हें अन्दर जाने की अनुमति दे दी गयी। उन्होंने मुख्य द्वार के बाहर अपने घोड़े बांध दिये। थैले उठाये और अन्दर चले गये।

उन्होंने देखा कि जिस पवित्र स्थान पर गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रकाश हुआ करता था, और जहां श्रद्धालु बड़े सम्मानपूर्वक माथा टेका करते थे, वहीं मस्सा खान रंगड़ बैठा हुक्का पी रहा है। वह शराब के नशे में चूर अपनी अध-खुली आंखों से नर्तकियों का नाच देख रहा था। नर्तकियों के पांव साजिंदों की ताल पर थिरक रहे थे। उनके अर्धनग्न शरीर बड़ी लोच के साथ लहरा-लहरा कर कामुक वातावरण उत्पन्न कर रहे थे। यह देखकर महताब सिंह व सुखा सिंह का खून खौल उठा। भाई सुखा सिंह दरवाजे के पास चौकसी के लिए खड़ा हो गया। भाई महताब सिंह अन्दर चला गया।

मस्सा खान यह पूछना ही चाहता था कि तुम किसकी इजाजत से सीधे अन्दर चले आये हो कि महताब सिंह ने दोनों थैले उसके सामने रख दिये। ज्यों ही वह आगे सिर झुका कर थैलों को देखने लगा, महताब सिंह बिजली की सी तेजी के साथ उस पर टूट पड़ा। तलवार के एक ही हाथ में उसने मस्सा रंगड़ का सिर धड़ से अलग कर दिया। उधर मस्सा के कई साथियों को सुखा सिंह ने यमधाम पहुंचा दिया। शेष भयभीत होकर भाग खड़े हुए। पूर्व इसके कि मस्सा के रक्षक कुछ संभल पाते, दोनों वीर, मस्सा का सिर एक थैले में डाल बड़ी तेजी के साथ बाहर निकल आये, और घोड़ों को एड़ लगाकर दुश्मनों की आंखों से ओझल हो गये। मस्सा के पहरेदार आदि इस अनेपक्षित घटना से इतने घबरा गये कि महताब सिंह व सुखा सिंह का पीछा करने का किसी को साहस ही न हुआ।

जकरिया खान को मस्सा रंगड़ की हत्या का समाचार मिला तो वह आग बबूला हो उठा। उसने भाई महताब सिंह को गिरफ्तार करने के लिए गांव मीरांकोट की ओर भारी सेना नूरदीन के नेतृत्व में भेज दी। नूरदीन को पता चला कि महताब सिंह का सात वर्षीय बच्चा राय सिंह, वहां के लम्बरदार नत्था नंद खेहरा के संरक्षण में है। उसने नत्था नन्द को बुलवा कर कहा कि उस बच्चे को साथ लेकर आये। लेकिन नत्था नन्द राय सिंह को कदापि उस कसाई के हवाले नहीं करना चाहता था। उसने निश्चय कर लिया कि चाहे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें वह राय सिंह की हर हालत में रक्षा करेगा। वह बच्चे को अपने कंधों पर बिठाकर पिछले दरवाजे से निकल गया। सुरक्षा की दृष्टि से अपने साथ पांच शस्त्रधारी व्यक्ति भी ले लिये। नूरदीन को नत्थानंद के निकल जाने का समाचार मिला तो उसने नत्था नन्द का पीछा किया। मुठभेड़ में नत्था नंद और उसके साथी मारे गये। बालक राय सिंह भी बुरी तरह घायल हो गया, जिसे मृत समझ कर नूरदीन के सैनिक उसे वहीं छोड़ गये।

संयोगवश एक कम्बोह महिला उधर से गुजरी। उसने बच्चे को घायल

अवस्था में तडपते देखा। उसकी प्राण-रक्षा के लिए वह उसे अपने घर ले आई। उसकी मातृवत परिचर्या और योग्य इलाज से राय सिंह बच गया। राय सिंह के वंशज आजकल गांव भड़ी, तहसील समराला, जिला लुधियाना में रहते हैं।

उधर भाई महताब सिंह तथा सुखा सिंह दुश्मन की सीमा से निकल कर पंजाब पार करके हनुमान गढ़ होते हुए वापस अपने प्रतिज्ञा-स्थल जयपुर पहुंचे और सिख संगत के सामने मस्सा रंगड़ का कटा हुआ सिर रख दिया। सर्वत्र खुशी की लहर दौड़ गई। दोनों वीरों का भरपूर सम्मान किया गया।

दुर्भाग्यवश सन् १७४५ में भाई महताब सिंह के मन में अपने परिजनों से मिलने की इच्छा जागृत हुई। वह अपने गावं मीरांकोट आया। इसकी भनक किसी तरह स्थानीय मुस्लिम अधिकारी के कानों में पड़ी। उसने जरा भी देरी किये बिना अपने सशस्त्र सिपाही वहां भेज दिए। मौका पाकर वे भाई महताब सिंह को उस समय गिरफ्तार करने में सफल हो गये जबकि वह बिल्कुल निहत्था बैठा था। वे उसे जंजीरों में जकड़ कर लाहौर ले गये। वहां उसे इस्लाम और मृत्यु इन दोनों में से एक को चुनने के लिये कहा गया।

महताब सिंह ने अपना धर्म त्यागने से सरासर इन्कार कर दिया। उसका सीधा-साफ उत्तर था-

कल्प अन्त ल्गर अ और मेरु जुग अन्त।

डिगै नहीं सिद्धान्त सों, स्वीकृत मत सों सन्त।।

इस पर उस धर्मवीर को सार्वजनिक रूप से चरखी पर बांधकर बड़ी निर्दयतापूर्वक मार डाला गया। मारने का यह ढंग अत्यन्त कष्टदायक था। परन्तु महताब सिंह पूर्णतः शांत रहा। प्रभु-सिमरन में अपना ध्यान पूर्णतः एकाग्र रखते हुए वह हरि-नाम का उच्चारण करता रहा। दुष्टों ने बाद में उसका सिर काट कर हीरा मण्डी लाहौर में लटका दिया। किन्तु यह आतंक का कारण बनने की बजाए हिन्दू समाज के लिए बलिदान की प्रेरणा का

स्रोत बन गया।

भाई महताब सिंह का नाम संसार में तब तक अमर रहेगा, जब तक पवित्र हरिमंदिर साहिब विद्यमान है। दरबार साहिब को दुष्ट प्रकृति मस्सा खान रंगड़ से मुक्त कराने के लिए वहां पहुंच कर जिस बेर के वृक्ष के साथ उसने घोड़ा बांधा था, वह आज भी विद्यमान है। स्वर्ण मंदिर की यात्रा के लिए आने वाले श्रद्धालु जन इस वृक्ष को आदरपूर्वक स्पर्श कर इसे प्रणाम करते हैं तथा इस प्रकार उस स्वाभिमानी शहीद के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

क्या डर कर मुंह मोड़ लें?

पंजाब का माझा क्षेत्र। एक छोटा सा गांव... 'पूला'। छोटे से खेत में एक नवयुवक जाट, जिसकी आयु लगभग २५ वर्ष रही होगी, दिन भर के परिश्रम के बाद शाम को वापस घर जाने की तैयारी कर रहा था।

"तारू सिंह, आज रात पांच-सात और साथियों के आने की सम्भावना है।" एक व्यक्ति ने आकर धीरे से उसे कहा।

"मेरा अहो भाग्य!" नवयुवक ने भी धीरे से उत्तर दिया, "चिन्ता न करो। सरलता से प्रबंध हो जाएगा।"

तारू सिंह अति विनम्र स्वभाव का सरल तथा पवित्र हृदय वाला धार्मिक युवक था। यद्यपि आर्थिक - स्थिति अच्छी न थी, तो भी उस के गुणों के कारण गांव के सभी लोग उससे प्यार करते थे।

बैलों को हांकता हुआ वह घर की ओर बढ़ चला। वह सोचता जाता था, "कितना धन्य हूं मैं कि मुस्लिम आततायियों के विरुद्ध सिर-धड़ की बाजी लगाकर संघर्ष करने वाले इन वीरों की भोजन व्यवस्था का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो रहा है। इनकी सेवा में सचमुच कितना आत्म-संतोष प्राप्त होता है। इन वीरों की चरण-रज अपने सिर पर धारण करने की इच्छा होती है। देश और धर्म की रक्षार्थ ही तो वे घरों से बेघर हुए जंगलों में मारे-मारे फिरते हैं।"

वह घर पहुंचा। उसकी विधवा मां और बहन दोनों मिल कर एक बड़ी-सी चक्की पर उस समय भी अनाज पीस रही थीं। वह अड़ोस-पड़ोस के लोगों का अनाज पीसकर घर की आय-वृद्धि में सहायक होती थीं। मेहनत-मजदूरी को बुरा नहीं समझती थीं। अनाज पीसने का मूल्य वह नकदी की बजाय अनाज

के ही रूप में लेना ज्यादा पसंद करतीं। गांव वालों को भी इसमें सुविधा थी। इस प्रकार मिलने वाले अनाज की वह रोटियां बनातीं। आम तौर पर वह रोटियां गेहूं और चने के आटे में नमक-मसाला डाल कर बनाई जातीं। रात के समय तारू सिंह यह रोटियां एक टोकरी में डाल कर और दूध की बाल्टी भर कर पास के जंगल में ले जाता, जहां जकरिया खान के दमन चक्र से बचने के लिए इधर-उधर के क्षेत्रों के कुछ लोग ठहरे हुए थे। उन्हीं के लिए यह खाद्य सामग्री वह नित्यप्रति रात को ले कर जाता था। वह रात देर तक उनके पास बैठा बातें करता रहता। शासन की ओर से उनके विरुद्ध उठाए जाने वाले किसी नए पग की जो सूचनाएं, उसे मिल पातीं, वह उन्हें देकर सावधान कर देता।

तारू सिंह ने घर में प्रवेश कर अपनी बूढ़ी मां के चरण छुए। बहन के आगे श्रद्धा से सिर झुकाया। फिर मां से बोला, "आज रोटियां कुछ ज्यादा बना कर देना। उधर कुछ और लोगों के भी आने की सम्भावना है।"

"बहुत अच्छा बेटा!" मां बोली, "पहले हाथ-मुंह धो लो। रोटी खा लो। तब तक हम सब तैयार कर देंगीं।"

तारू सिंह जब सब सामान लेकर जाने को तैयार हुआ तो मां ने कहा, "बेटा, मैं जानती हूं कि तुम अपने भाइयों की सहायता का यह पुण्य कार्य कर रहे हो। यह काम अच्छा है। दुष्ट जकरिया ने इन्हें घरों से बेघर होने पर विवश कर दिया है। हमारा धर्म दीन-दुखियों की सेवा-सहायता की शिक्षा देता है। लेकिन...

"लेकिन क्या, मां जी?"

"लेकिन कभी यह भी सोचा है कि यदि ज़करिया को इस बात की खबर मिल गई कि तुम नित्य कहां जाते हो तो हमारा क्या हाल होगा? हम कहां दर-दर की ठोकरें खाती फिरेंगीं?"

एक मिनट तक तारू सिंह चुप रहा। कुछ सोचने के बाद फिर साहस करके बोला, "मां जी! हम सब जानते हैं कि ऐसी स्थिति में क्या होगा। लेकिन क्या हम उससे डर कर अपने पवित्र कार्य से मुंह मोड़ लें? अपने

कर्तव्य से विमुख हो जाएं?"

इस तरह समझाकर तारू सिंह रोटियां आदि लेकर चला गया और फिर नित्य की भांति रात को देर से लौटा। अभी सोने की तैयारी में ही था कि किसी ने द्वार खटखटाया। बूढ़ी मां शंकित हो उठी। उसके माथे पर पसीना उभर आया। वह घबरायी हुई दरवाजे की ओर देखने लगी। किन्तु तारू सिंह बिल्कुल शांत था। वह ताड़ गया कि इतनी रात गए कौन आकर दस्तक दे सकता है। फिर भी उसके चेहरे पर किसी तरह की घबराहट का कोई चिन्ह न था, मानो वह इस स्थिति के लिए पहले से ही तैयार हो। उसने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया। अपेक्षा के अनुसार उसने मुगल सैनिकों को बाहर खड़े पाया।

"हम तुम्हें बग़ावत के इलज़ाम में गिरफ्तार करते हैं।" उनका मुखिया बोला, "हमें तुम्हारी खतरनाक और गद्दाराना हरकतों की खबर मिली है। अब तुम्हें गिरफ्तार करके लाहौर ले जाया जाएगा और बगावत के जुर्म में मुकदमा चलाया जाएगा।"

तारू सिंह जानता था कि एक न एक दिन यह नौबत अवश्य आएगी। उसे मालूम था कि वह जिस आग से खेल रहा है, वह न सिर्फ उसे, बल्कि उसके सारे परिवार को जला कर राख कर देगी। किन्तु वह इस आहुति के लिए तैयार था। अतः जिस हालत में खड़ा था, उसी में उन सैनिकों के साथ चल पड़ा। जाते समय ऊँची आवाज़ में कहता गया, "प्यारी मां जी और बहन जी, अब आपका वाहिगुरु ही रक्षक है। उसकी कृपा पर भरोसा रखना।"

रात बिताने के लिए सैनिक अगले गांव में रुक गए। जब सब सो गए तो तारू सिंह को अचानक एक परछाई ने जगाया। उसने उसके कान में कहा, "मित्र, मैं एक दल को साथ लाया हूं, जो वृक्षों नीचे छिपा है। मेरा इशारा पाते ही वह दल इन सैनिकों पर टूट पड़ेगा और तुम निकल भागना।"

"नहीं।" तारू सिंह ने सिर हिलाते हुए कहा, "मैं अपने देशवासियों को दुष्ट जकरिया खान की प्रतिकारपूर्ण कार्यवाहियों का शिकार नहीं बनाना

चाहता। मैं यहां से खिसक गया तो वह इस गांव तथा आसपास के सर्वथा निर्दोष व्यक्तियों पर अत्याचारों का पहाड़ ढा देगा। मैं नहीं चाहता कि मुझ अकेले के कारण सैकड़ों को कष्ट भोगना पड़े। मुझे लाहौर जाने दो, जो भाग्य में लिखा है, होकर रहेगा। तुम इन सैनिकों के जागने से पहले ही यहां से शीघ्र ही चले जाओ।"

विवश तथा निराश होकर उस मित्र को वहां से जाना पड़ा और उसका दल भी पुनः जाकर जंगलों में लुप्त हो गया।

लाहौर में जकरिया का अभियोग एक शैतानी नाच के सिवा कुछ न था। उसने तारू सिंह पर आरोप लगाते हुए कहा, "तुम भागे हुए विद्रोही सिखों की मदद करते हो। उन्हें खाना खिला कर रुपया देकर, अपने घर ठहरा कर उनका उत्साह बढ़ाते हो। तुम्हारा यह कार्य हमारे दुश्मनों को सहायता पहुंचाने के जुर्म में आता है।"

"मैं जिन्हें खाना खिलता हूं या मदद करता हूं, वह मेरे धर्म-भाई हैं।" भाई तारू सिंह ने निर्भीक होकर उत्तर दिया, "भाइयों की सहायता करना मैं अपना कर्तव्य ही नहीं, धर्म समझता हूं। वे किसी के दुश्मन नहीं हैं, केवल अन्याय और अत्याचार के दुश्मन हैं।"

ज़करिया तारु सिंह की इस दलील से प्रसन्न नहीं हुआ। वह और भी अधिक क्रुद्ध हो उठा।

"हमारी नज़र में यह भारी जुर्म है।" जक़रिया बोला, "हम तुम्हें चर्खी पर चढ़ाकर तुम्हारी हड्डियां तोड़ने की सजा देते हैं।"

चुनांचे ऐसा ही किया गया। चर्खी घूमी। तारू सिंह के अंग-प्रत्यंग टूट गए। वह अर्ध-बेहोश हो गया। उसे तीन बार चर्खी पर चढ़ाकर अतीव यातनाएं दी गईं। फिर ज़करिया के आदेश पर चर्खी का घूमना बंद कर दिया गया। ज़करिया ने उसके पास आकर कहा, "शायद अब तुम काफिरों के घर में पैदा होने का नतीजा समझ गए होगे। अगर तुम मुलसमान बन जाओ, तो न सिर्फ तुम्हारी जिन्दगी बच सकती है, बल्कि तुम्हें बहुत-सा रुपया भी

इनाम में दिया जाएगा।वरना अभी और ज्यादा अजीयतें देकर तुम्हें यमधाम पहुंचा दिया जाएगा।"

तारू सिंह यद्यपि अर्धबेहोशी में था, उसका बंद-बंद टूट चुका था, फिर भी उसने जवाब में बस इतना ही कहा, "नहीं, नहीं, नहीं।"

ज़करिया का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उसने जल्लादों को हुक्म दिया कि लोहे की रांपी से इसकी खोपड़ी उतार लो। जल्लादों ने ऐसा ही किया। इस प्रकार की घोर यातनाओं में भी तारू सिंह अडिग रहा। मन ही मन जपजी का पाठ करता रहा। असह्य वेदना के कारण वह मृतप्राय हो गया। तब उसे लाहौर के दिल्ली दरवाज़ा के बाहर 'शहीद गंज' में लहूलुहान अवस्था में तड़पने के लिए फैंक दिया गया। जुलाई, १७४५ को उसके प्राण पखेरू उड़ गए। इस प्रकार एक दृढ़ निश्चयी वीर धर्म की बलिवेदी पर शहीद हो गया।

ईश्वर का विचित्र न्याय कि जिस दिन ज़करिया ने भाई तारू सिंह को यातनाएं देनी प्रारम्भ की थीं, तभी से जकरिया को गुर्दे का दर्द शुरू हो गया। उसका पेशाब बंद हो गया। पेट फूल गया। उसके लिए सांस लेना भी कठिन हो गया। हर सम्भव इलाज के बावजूद उसका रोग बढ़ता ही गया। अन्ततोगत्वा भाई तारू सिंह के स्वर्गारोह से पांच-सात घंटे बाद ही वह यह कहता हुआ नरकगामी हआ कि "खुदा की लाठी यद्यपि बे-आवाज है तथापि गुनाहगार को सज़ा जरूर मिलती है।"

o

वे प्राणों पर खेल गये, पर मुसलमान न बने

"हुजूर! हम मानते हैं कि हमारे कुछ केशधारी भाई आप से बागी हैं, आपको तथा आपकी सेना को परेशान किया करते हैं। किन्तु यहां लाहौर शहर के इन शांतिप्रिय आम सिखों का क्या दोष है? वे बिल्कुल बेकसूर हैं, सरकार! वृथा ही इनका खून न बहाया जाय। यही विनती लेकर हम आपके दरबार में हाजिर हुए हैं।"

हिन्दुओं के एक प्रतिनिधिमंडल ने लाहौर के तत्कालीन सूबेदार याहिया खान से कर-बद्ध निवेदन किया।

"नहीं, यह सभी हमारे दुश्मनों के खानदानों से तअल्लुक रखते हैं।" याहिया खान ने लाहौर के सभी सिखों के कत्ल के अपने फैसले में कोई परिवर्तन करने से इन्कार करते हुए कहा, "यह बागियों के साथ हमदर्दी रखते हैं। इन्हें खत्म करना ही होगा। तुम लोग इनकी सिफारिश करने आये हो। जाहिर है कि तुम लोग भी इन्हीं के साथ मिले हुए हो। भाग जाओ यहां से, वरना इनसे पहले तुम्हें खत्म कर दिया जाएगा।"

विवश हो प्रतिनिधिमंडल अपना-सा मुंह लेकर लौट आया।

१ जुलाई, १९४५ ई. को जकरिया खान की मौत के बाद उसका पुत्र याहिया खान लाहौर का सूबेदार बना था। उसने भी अपने पिता द्वारा शुरू किये केशधारी हिन्दुओं के विरुद्ध अभियान को यथावत जारी रखा था। जकरिया खान की ही तरह उसने भी सिखों के सर्वनाश का आम हुक्म जारी कर दिया। इस जघन्य कार्य का आरम्भ उसने लाहौर से ही करने का निश्चय किया था।

उसके अत्याचार से बचने का केवल एक ही मार्ग था कि सभी सिख मुसलमान बन जाते।

लाहौर में केशधारी वर्ग के पुरुष, स्त्रियां और बच्चे, सभी को गिरफ्तार कर जल्लादों के सुपुर्द कर दिया गया। इससे सारा हिन्दू समाज व्यथित हो उठा था। अतः उक्त प्रतिनिधिमंडल उनके जीवन-दान की याचना करने याहिया खान के दरबार में उपस्थित हुआ था। किन्तु उन्हें मायूस होकर लौटना पडा।

याहिया के बीभत्स आदेश का अक्षरशः पालन हुआ। लाहौर के सभी सिखों, यहां तक कि महिलाओं, बच्चों की भी हत्या कर दी गई। वे सभी शहीद हो गए। एक भी अपना धर्म त्यागने को तैयार न हुआ। याहिया खान द्वारा यह भी घोषणा की गई कि कोई भी व्यक्ति, जो गुरु-वाणी का पाठ करता पाया गया, मृत्यु-दंड का भागी होगा।

मुगल अत्याचारों की तीव्रता के कारण पंजाब के अन्य अनेक स्थानों के लगभग पन्द्रह हजार सिखों ने पलायन कर गुरदास नंगल के पास काहनूवान की सरकंडों वाली दलदल भरी भूमि में शरण ली। यहां मुगल सेना व उसकी भारी भरम तोपों आदि के लिए झाड़ीदार दलदल पार करके पलायनकर्ता सिखों के निकट पहुंच पाना अति कठिन था। किन्तु इन झाड़ियों को काटकर सरकारी सेना ने रास्ता बना ही लिया और सारे सिख रावी नदी की ओर धकेल दिये गये। सिखों ने रावी पार की तो मुगल सेनाओं ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा। अब इन १५ हजार सिखों के पास इसके सिवा और कोई रास्ता न बचा था कि वे बसोहली, पड़ोल, कठुआ आदि के पहाड़ी इलाकों की ओर निकल जायें।

स्थिति अत्यन्त निराशाजनक थी। न तो खाने के लिए कुछ पास था, न युद्ध सामग्री। थकान और भूख के मारे उनके घोड़े भी अत्यन्त निढाल हो रहे थे। सामने ऊँची पहाड़ियां थीं, जिन पर चढ़ना इन शिथिल हुए घोड़ों के बस की बात न रही थी। उनके दाईं ओर तेजी से बह रही बाढ़ भरी नदी थी, और पीछे थी उन्हें अपना शिकार बनाने के लिए तेजी से दौड़ी आ रही मुगल सेना। अतः उन्होंने वापस माझा (ब्यास और रावी नदियों के

बीच इलाका) की ओर जाने का निर्णय किया। किन्तु रावी पूरे यौवन पर थी। इसे पार करना असम्भव था। फैसला किया गया कि जिनके पास घोडें नहीं हैं, वे तो पहाड़ों की ओर चले जायें और अपने आपको भाग्य के भरोसे छोड दें तथा जिनके पास घोडें हैं, वे दुश्मन की पंक्तियों को चीरकर अपना मार्ग बनावें।

जो सिख पहाड़ों की ओर गये, उन्होंने मण्डी और कुल्लू में येन-केन प्रकारेण वहां कुछ मास बिताये और अन्त में कीरतपुर पहुंचने और खालसा सेना के साथ जा मिलने में सफलता प्राप्त कर ली।

अधिकांश ने पीछा कर रहे शत्रु की सफों के बीच में से रास्ता बनाने की भरपूर कोशिश की। किन्तु वे घेर लिये गये। सैकड़ों मारे गये। कुछ कैदी बना लिये गये। शेष बचने के लिए जंगलों की ओर भागे, पर मुगल सेना व आसपास की मुस्लिम जनता ने उनका पीछा कर उन पर आक्रमण कर दिया। लगभग दो हजार सिख किसी तरह बचकर रावी पार पहुंचने में सफल हो सके। वे गुरदासपुर जिला के रियारकी क्षेत्र में दाखिल हुए। यह जून का मास था। वे भूखे, नंगे पांव और जख्मी अवस्था में थे । तपती रेत ने उनके कष्टों को और भी बढ़ा दिया। किन्तु उनके साहस की थाह न थी। शत्रु के सम्मुख समर्पण के विचार ने उन्हें छुआ तक नहीं। बेहद दबाव के बावजूद वे विदेशी आक्रमणकारियों के सम्मुख झुके नहीं। हिन्दू धर्म के प्रति अपनी आस्था पर उन्होंने जरा भी आंच न आने दी।

जलती रेत को पार करने के लिए उन्होंनें अपने कपड़ों से कुछ टुकड़े फाड़े और अपने नंगे पांवों पर लपेट लिए। इस प्रकार उन्होंने आग सी जलती रेत के मैदान को पार किया और ब्यास नदी पर पहुंच गये। इस नदी को उन्होंने श्री हरगोविन्दपुर के पास से पार किया। तत्पश्चात वे सीधे सतलुज की ओर बढ़ गये। इस नदी को उन्होंने आलीवाल के पास से पार किया और मालवा क्षेत्र में प्रवेश किया, जो इस समय एक शांत क्षेत्र था।

याहिया खान द्वारा सिखों के विरुद्ध प्रारम्भ किये गये पैशाचिक अभियान में लगभग सात हजार सिख मारे गये। तीन हजार सिख कैदी बनाकर लाहौर ले जाए गये। इन्हें भारी यातनायें देकर पीड़ित-प्रताड़ित किया गया। फिर

याहिया ने उन्हें मुसलमान बन कर सुखी जीवन बिताने की प्रेरणा देनी शुरू की। उन्हें कहा गया कि यदि जीवित बचना चाहते हो, तो मुसलमान बन जाओ।

"कलमा पढ़ो, नाम बदलो, गोमांस खाओ और फिर देखो, हम तुम्हें किस तरह मालामाल कर देते हैं।" याहिया ने स्वयं एक ऊँचे मंच पर खड़े होकर यह घोषणा की।

किन्तु उनमें से किसी एक ने भी पतित होना स्वीकार न किया। याहिया अभी मंच से उतरा भी न था कि सभी के सभी तीन हजार कैदियों ने गगनभेदी उच्च स्वर से "सत श्री अकाल" का जयकारा लगाकर उसका मुंह चिढ़ाया। बस फिर क्या था, याहिया के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत उन सबके सिर कलम करने का हुक्म दे दिया। सभी को 'नखास' ले जाकर सामूहिक रूप से कत्ल कर दिया गया। खून के फव्वारे छूट गये। कटे सिरों के ढेर लग गये। तड़पती लाशें भयानक दृश्य पेश कर रही थीं।

सिखों का यह कत्लेआम जून, १७४६ में हुआ। भारी जानी नुकसान होने के कारण इसे "घल्लूघारा" का नाम दिया गया। किन्तु यह छोटा घल्लूघारा था। अभी सिखों को आगे जाकर सन् १७६२ ई. में एक "बड़े घल्लूघारा" में से गुजरना था।

सन् १७४६ ई० के इस घल्लूघारे में लगभग १० हजार सिख—पुरुष, मातायें और बच्चे—अत्यन्त बर्बरतापूर्वक कत्ल कर डाले गये। यह लोग चाहते तो अपना धर्म त्यागकर मुस्लिम शासकों की कृपा प्राप्त कर अत्यन्त सुख का जीवन व्यतीत कर सकते थे, किन्तु उनमें से एक ने भी ऐसा न सोचा। उन्होंने स्वधर्म-त्याग की बजाये कष्टों, संकटों और मृत्यु का मार्ग चुना।

उन्होंने शहादत का वरण किया। इतिहास में उनका बलिदान आदर और सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। वे मर कर भी अमर हो गये। आओ, उन मौत के शैदाई वीरों का नमन् कर उनका गौरव मनायें, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करें।

o

इनके तो सिर-कटे धड़ भी लड़ते हैं

"अभी-अभी समाचार मिला है कि अफगानिस्तान से आए बर्बर आक्रमणकारी अहमद शाह अब्दाली ने अमृतसर में पवित्र हरिमंदिर को बारूद भर कर उड़ा दिया है" बाबा दीप सिंह ने अपने साथियों को सम्बोधित करते हए कहा, "असंख्य गोओं को मार कर पवित्र सरोवर को उनकी लाशों से अपवित्र करने का जघन्य कार्य उस दुष्ट ने करने का दुःसाहस किया है।"

क्रोध के मारे बाबा जी की आंखों में खून उतर आया था। उनके बाजू फड़फडा रहे थे। ऐसा महसूस हो रहा था कि जैसे किसी ने उनके दिल में खंजर भोंक दिया हो।

वे अमृतसर जिला के गांव पाहुविंड के निवासी जाट थे। अपने समय के उच्चकोटि के सिख विद्वानों में से थे। वे दमदमा साहिब के गुरुद्वारा के प्रमख थे और गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रतियां तैयार करने में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते रहे थे। यह प्रतियां अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती थीं। वे सन्त भी थे और योद्धा भी। वे लम्बे कद-काठ के सुदृढ़ शरीर वाले तथा असामान्य साहसी व्यक्ति थे। देश-धर्म की खातिर अपने प्राण न्यौछावर करने के लिए हर समय सिद्ध रहते थे। बन्दा वीर वैरागी की अनेक लड़ाइयों में उन्होंने प्रशंसनीय कार्य कर दिखाया था। युद्धों में उनका दल सदैव अग्रणी रहता था और धर्म हित शहीदी तक प्राप्त करने की अभिलाषा से ओत-प्रोत रहने के कारण लोग इन्हें शहीद के नाम से पुकारते थे। वे जिन्दा शहीद

थे। अहमद शाह अब्दाली द्वारा हिन्दुस्थान पर उसके चौथे आक्रमण के दौरान श्री दरबार साहिब के ध्वस्त किये जाने तथा पवित्र सरोवर को अपवित्र कर उसे पूर दिये जाने (सन्१७५७ ई.) के समाचार ने उन्हें अत्यन्त उद्विग्न कर दिया था।

उन्होनें गर्जना करते हुए कहा, "हम इस घोर अपमान का बदला लेकर रहेंगे। सिंहो! चलो, गुरु रामदास के द्वारे चलो। गुरु का अमृतसर हमें बुला रहा है। पवित्र हरिमंदिर की मर्यादा भंग कर उसे नष्ट करने वालों से बदला लेना हमारा धर्म है। धर्म-कार्य की पूर्ति हेतु कमरें कस लो। अब्दाली अब स्वयं तो अफगानिस्तान वापस लौट गया है, किन्तु अपने पीछे अपने बेटे तैमूरशाह को पंजाब सौंप गया है। बेटे की सहायता के लिए अपने सेनापति जहान खां दुर्रानी के नेतृत्व में दस हजार पठानों की सेना भी वह छोड़ गया है। सिंहो! चलो, अपने धर्म-स्थलों के अपमान का बदला लेकर हम अपने जन्म को सार्थक करें।"

बाबा जी ने अपनी तलवार हवा में लहरायी और फिर उससे जमीन पर एक रेखा खीच कर बोले, "इस पवित्र कर्तव्य को निभाने के लिए जो-जो शहादत का जाम पीने को तैयार हैं, वे इस लकीर को पार करके आगे आ जायें।"

देखते ही देखते उनके जत्थे के पांच सौ के पांच सौ वीर रेखा पार करके आगे आ गये। बस फिर क्या था? नगारे पर चोट हुई। सभी वीर पूरे जोश के साथ बाबा जी के नेतृत्व में दमदमा साहिब से अमृतसर की ओर बढ़ चले।

धर्मयुद्ध के इस नगारे को सुनकर रास्ते में धर्म पर मर-मिटने की चाह वाले अनेकों शूरवीरों के जत्थों के जत्थे उनके साथ जुडते चले गये।

मार्ग में किसी ने पूछा, "बाबा जी, हम संख्या में कम हैं। मुसलमानों की फौज तो बेअन्त है। हम उनका मुकाबला किस तरह कर सकेंगे?"

यह सुनकर बाबा जी को जोश आ गया। उनके क्रोध की आग पर

मानो तेल छिड़का गया हो। वे भड़क उठे और फरमाया, "ऐसी निराशा की बातें मत करो। दशमेश जी का कथन याद करो-

सवा लाख से एक लडाऊं। तभी गोविन्द सिंह नाम कहाऊं।"

तरनतारन (अमृतसर से १० मील की दूरी पर) पहुंचने तक उनके साथ आ जुड़ने वालों की संख्या पांच हजार हो गयी। सभी ने तरनतारन के पवित्र सरोवर में स्नान किया। दुल्हों सी पोशाक पहनी। अपनी कलाइयों पर गाना (प्रतिज्ञा -सूत्र) बांधा। अपने कपड़ों पर केसर छिड़का और इस प्रकार सुसज्जित होकर मृत्यु रूपी राजकुमारी का वरण करने के निश्चय से चल पड़े।

सेनापति जहान खां के गुप्तचरों ने उसे सूचना दी कि बाबा दीप सिंह के नेतृत्व में भारी संख्या में सिख अमृतसर की ओर कूच कर रहे हैं। उस समय हाजी अताई खान इस क्षेत्र के ग्रामों में व्यवस्था कायम करने के लिए अपनी सेना के साथ घूम रहा था। जहान खां ने अताई खान को अमृतसर जाकर सिखों को दंडित करने के लिए कहा। साथ ही इसी समय ढोल बजाकर जिहाद (इस्लाम के प्रचारार्थ किया जाने वाला युद्ध) की घोषणा कर दी गई। सभी मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध मुजाहिदों की सेना में भरती होने का आह्वान किया गया।

इस प्रकार जहान खां ने कई हजार घुड़सवार इकट्ठे कर लिए। बाबा दीप सिंह के नेतृत्व में बढ़ रहे सिखों के मुकाबले के लिए जहान खां आगे बढ़ा। दोनों सेनायें अमृतसर और तरनतारन के मध्य में गोहरवाल के निकट भिड़ गईं।

इस युद्ध में सिख सैनिक इस शक्ति और वीरता से लड़े कि मुस्लिम सेना सभी दिशाओं में भाग खड़ी हुई। जहान खां ने अपने सैनिकों को धमका कर इकट्ठा करने की कोशिश की। किन्तु भागते हुए मुजाहिदों पर उसकी डांट-डपट का कोई असर न हुआ। तभी अताई खान भारी सेना लेकर जहान खां के साथ आ मिला। युद्ध का रुख अब सिखों के विपरीत हो गया। खूंखार

संघर्ष शुरू हो गया।

लड़ते-लड़ते बाबा दीप सिंह व उनके साथी अमृतसर की ओर बढ़ते ही चले जा रहे थे। तैमूर शाह की सेना गाजर-मूली की तरह कटने लगी। अताई खान एक माना हुआ सूरमा था। वह बाबाजी से युद्ध करने लगा। दोनों योद्धाओं में घंटों युद्ध चलता रहा। अंत में दोनों के सिरों पर एक-साथ घातक प्रहार हुआ। अताई खान तो वहीं ढेर हो गया। भाई फतेह सिंह बाबा दीप सिंह के पास ही खड़ा था। उन्हें गिरता देखकर बाबाजी से बोला, "बाबा जी, आपका वचन दरबार साहिब पहुंचने का था पर आप तो यह राह में ही बिछुड़ने लगे हैं?"

उसने यह कहा ही था कि दुनिया ने एक चमत्कार देखा, जिसकी आज भी लोग कल्पना करके दांतों तले ऊँगली दबा लेते हैं। बाबा जी का सिर धड़ से अलग हो चुका था। फतेह सिंह के शब्दों में उन्हें सचेत कर दिया। उन्होंने अपने बायें हाथ से अपने सिर को पकड़ लिया और उसे सहारा दिया। अपने दायें हाथ से वे अपना भारी खंडा (दो-धारी तलवार) चलाते रहे। राह में आने वाले शत्रुओं को गाजर-मूली की तरह काटते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। यह अद्भुत दृश्य देखकर मुस्लिम सेना भाग खड़ी हुई। जहान खां चीख पड़ा, "यह क्या?" इनके तो सिर कटे धड़ भी लड़ते हैं।" कुछ समय के लिए उसके होश-हवाश गुम हो गये।

बाबा दीप सिंह शहीद द्वारा अपने बायें हाथ की हथेली पर अपना सिर रखकर दायें हाथ से बिजली की सी तेज के साथ दोधारी तलवार चलाते हुए की गई मारकाट से पठान फौज में भगदड़ मच गई। बायें हाथ पर टिकाया हुआ मुस्कराता हुआ उनका चेहरा ऐसा दिखाई देता था, जैसे उनकी सभी मनोकामनायें पूरी हो गई हों। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार सैंकड़ों शत्रुओं को यमधाम पहुंचाने के बाद श्री दरबार साहिब की परिक्रमा में पहुंच अपना सिर यों भेंट किया, मानों माथा टेक रहे हों और फिर दंडवत वन्दना करते हुए वहीं हमेशा के लिए लेट गये। यह घटना सन् १७५७ की है।

इस प्रकार बाबा जी ने अमृतसर पहुंचने का अपना प्रण ही पूरा नहीं किया, बल्कि आततताइयों के भी छक्के छुड़ा दिए। बाबा जी के शरीर का संस्कार चाटीविंड के बाहर किया गया। वहां पर उनकी शानदार यादगार "शहीदगंज बाबा दीप सिंह" कायम है। श्रद्धालुगण वहां अपने श्रद्धासुमन अर्पित कर देश-धर्म के लिए जीने-मरने की अक्षय प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

धन्य है शहीद बाबा दीप सिंह जी का वह अद्‌भुत शौर्यपूर्ण अविस्मरणीय बलिदान! भावनाओं का ज्वार हो तो ऐसा-

सूरा वही सराहिये बिन सिर लड़त कबन्ध
लोक लाज कुल-कानि को, तोड़ि होत निर्बन्ध।।

o

असीं दूणे चौंणे होए

"महाराज, मुझसे घोड़ों का यह दाना-बांट नहीं हो सकता," अपने कुछ साथियों द्वारा चिढ़ाये जाने पर जस्सा सिंह ने सिंहपुरिया मिसल के नवाब कपूर सिंह के पास आकर रोते-रोते कहा, "यह लोग मेरी बोल-चाल पर मुझे बहुत छेड़ते हैं, परेशान करते रहते हैं।"

नवाब कपूर सिंह ने जस्सा सिंह को घोड़ों का दाना बांटने पर नियुक्त कर रखा था। जस्सा सिंह लगभग १२ वर्ष दिल्ली में माता सुन्दरी जी के पास रहा था और वहीं पढ़ा-लिखा था। इसलिए उसकी बोली उर्दूमय हो गई थी। इस कारण नवाब कपूर सिंह के कई कर्मचारी, जो सभी पंजाबी ही बोलते थे, जस्सा सिंह के मुख से 'हम को' 'तुम को' की भाषा सुनकर उसका मजाक उड़ाया करते थे। इसी से तंग आकर जस्सा सिंह ने नवाब साहिब से उपरोक्त शिकायत की।

इस पर नवाब सहिब ने कहा, "गुरु गोविन्द सिंह के पंथ में तो सेवा से ही मेवा मिलता है।" फिर हंसी-हंसी में कह दिया, "जस्सा! मुझे तो उन्होंने पंखा करने की सेवा करने के बदले उठाकर नवाब बना दिया है। तुम्हें शायद बादशाह ही बना दें।"

किन्तु इस प्रकार मजाक में कहे गये शब्द आगे जाकर सचमुच सत्य ही सिद्ध हो गये, जब सन् १७६१ ई. में जस्सा सिंह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और वह सुल्तान-उल-कौम" (जाति -नरेश) या "बादशाह" के नाम से विख्यात हुआ। उसने अपना सिक्का भी (सन१७६१) जारी किया, जिस पर अंकित था :

"सिक्काजद दर जहां अफजले अकाल।
मुल्के अहमद गिरफ्त जस्सा कलाल।।"

(जस्सा सिंह कलाल द्वारा अहमदशाह से छीने गये प्रदेश में अकाल प्रभु की कृपा से यह सिक्का जारी किया गया।)

इस प्रकार हिन्दू वीरों ने बन्दा वैरागी के ५१ वर्ष बांद अपना सिक्का जारी करने का यह गौरवपूर्ण अवसर पुनः प्राप्त किया, यद्यपि लाहौर पर यह अधिकार थोड़े समय तक ही रह सका।

मीर मन्नू अप्रैल,१७४८ में पंजाब का सूबेदार बन गया था। अब्दाली ने हिन्दुस्थान पर अपने तीसरे आक्रमण (सन्१७५१-५२) के दौरान मीर मन्नू से अपनी शर्तें मनवा कर उसे ही पुनः लाहौर का सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार मीर मन्नू अब अफगान आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली तथा दिल्ली के मुगल बादशाह, दोनों का ही आश्रयप्राप्त सूबेदार बन गया था। परले दरजे का धर्मान्ध होने के कारण इतिहास में उसका नाम सिख वीरों पर अत्याचार के लिए अति कुख्यात है।

उस समय व्यास नदी से रावी नदी तक का क्षेत्र सिख जत्थेबंदियों का मुख्य अड्डा था। अतः यह क्षेत्र मीर मन्नू के अत्याचारों का मुख्य केन्द्र बन गया। उसने इस इलाका के सभी मुस्लिम चौधरियों को आदेश भेजा कि वे प्रत्येक गांव की सूची तैयार करें कि वहां का कौन-कौन सिख जत्थेदार बनकर घूमता-फिरता है। उन्हें कहा गया कि वे हर मास यह सूचना लाहौर भेजें कि प्रत्येक गांव में रहने वाले सिखों में से कितने मार डाले गये हैं। और कितने गांव छोड़ गये हैं। उसने लाहौर से भी कई गश्ती दस्ते सिखों का शिकार करने के लिए भेज दिए।

मीर मन्नू के सहयोगी जालन्धर के हाकिम अदीना बेग ने होला महला के त्योहार के अवसर पर आनन्दपुर साहिब में सिख यात्रियों पर अकस्मात (मार्च,१७५३) में धावा बोल दिया और बहुतों को मार डाला। उधर स्वयं मीर मन्नू बटाला की ओर बढ़ा। अमृतसर के राम रौनी किले को घेर कर

उसने उड़ा दिया और वहां के नौ सौ दुर्गरक्षक सिखों को कत्ल कर डाला। सैकड़ों निर्दोष केशधारी व सहजधारी हिन्दू जिनमें स्त्रियां व बच्चे भी शामिल थे, जंजीरों में जकड़ कर लाहौर लाये गये। उन्हें जेलों में डालकर उन पर नाना प्रकार के अत्याचार ढाये गये। औरतों को सवा-सवा मन आटा प्रतिदिन पीसने के लिये विवश किया गया। खाने के लिए आधी रोटी और पीने को भरपेट पानी तक न दिया गया। उन्हें धर्म-परिवर्तन करने तथा मुसलमान युवकों से विवाह करने के लिए कहा गया। किन्तु किसी ने भी यह स्वीकार न किया। इस पर उनके सामने ही उनके बच्चों को भालों पर टांगा गया फिर उनके टुकड़े-टुकड़े किये गये। कई माताओं के बच्चों के टुकड़े करके उन की झोलियों में फेंके गये। कई माताओं के बच्चों के अंगों के हार बना कर उनके गलों में डाले गये। माताओं की आत्मायें तड़प रही थीं। आंखों में छम-छम नीर बह रहा था। पर जबानों पर एक ही जाप था, "सत-नाम श्री वाहे गुरु।"

वाहेगुरु की ही कृपा से सिख, मीर मन्नू के ऐसे नाना-विध अत्याचारों के बावजूद दिनों-दिन बढ़ते व फलते-फूलते ही जा रहे थे। रहस्य था कि उन्हें पंजाब के समूचे हिन्दू समाज का हर प्रकार का सहयोग व सहायता प्रकट व अप्रकट, दोनों तरह से प्राप्त थी। उल्लेखनीय है कि पंजाब के सहजधारी परिवारों में यह प्रथा विकसित हो गई थी कि बड़े लड़के को सिख पंथ मे दीक्षित करवा दिया जाता था ताकि हिन्दू समाज के संघर्ष-शील इस अग्रिम दल की संख्या में कभी कमी न आने पाये और यह वृद्धिगत ही होता रहे। यह पंजाबी कहावत उन दिनों केशधारी वर्ग में खूब प्रचलित हो गई:-

मीर मन्नू असाडी दातरी असी मन्नू दे सोए।
ज्यों सानूं मन्नू कट्टे, असीं दूणे चौंणें होए।।

अर्थात् "मन्नू हमारी दराँती है और हम ऐसे पौधे हैं, जो मन्नू द्वारा काटे जाने पर दुगुने-चौगुने होकर घर-घर में उगते चले जाते हैं।"

नवम्बर, १७५३ में मीर मन्नू को सूचना मिली कि सिखों में एक दल मल्लांपुर के ईख के खेतों में छिपा हुआ है। यह सुनते ही वह उनका शिकार

करने की नीयत से फौज की एक टुकड़ी लेकर वहां पहुंच गया और उस खेत को चारों ओर से घेर लिया, जहां सिखों का वह दल बैठा था। प्राणों पर बनती देखकर सिखों ने भी बंदूकें सम्भाल लीं। दोनों ओर से गोलियां बरसने लगीं। दैवात् मन्नू का घोड़ा बिदक गया और दो पैरों पर ऐसा सीधा खड़ा हो गया कि मन्नू घोड़े की पीठ से खिसक पड़ा उसका एक पांव रकाब में फँस गया। घोड़ा लाहौर की ओर भाग खड़ा हुआ। मन्नु का रकाब में फँसा पांव ऊपर था और सिर नीचे। इसी स्थिति में वह घसीटा जाने लगा। इस प्रकार मीलों तक घसीटा जाता हुआ वह बुरी तरह चिल्ला रहा था। जगह-जगह टकरा-टकरा कर उसके सिर के कई टुकड़े हो गये। चेहरा इतना छिल गया कि पहचाना तक नहीं जाता था। उसके अंगरक्षक चाहते हुए भी उसकी मदद न कर सके। बाद में जब कहीं उसका घोड़ा रुका, मीर मन्नू इस संसार से विदा होकर नरकगामी हो चुका था। उसके सैनिक उसके पीछे-पीछे भागे आ रहे थे। शहर में पहुंचने पर फौज ने मीर मन्नू की लाश अपने कब्जें में कर ली। वह चाहती थी कि जब तक सभी फौजियों का कई मास का बकाया वेतन चुका नहीं दिया जाता, मन्नू की लाश दफनाने नहीं दी जाएगी। सिखों को इस गड़बड़ में अच्छा मौका मिल गया और वे नखास बाजार पहुंचकर सभी कैद महिलाओं को काल कोठरियों से छुड़ा लाये।

मीर मन्नू के देहांत के बाद मई, १७५४ में उसका बेटा भी चल बसा।

परिस्थितियों में कुछ बदलाव हो चला। दिल्ली के मुगल दरबार की निर्बलता और उन दिनों के मराठा- अफगान संघर्ष ने सिखों की वीर टोलियों.. मिसलों को शक्तिशाली बनने का अच्छा मौका दिया। अब्दाली भारत पर जब पांचवीं बार (सन् १७५९) आक्रमणकारी हुआ तो उसने अब अपने विश्वास-पात्र साथी करीमदाद खान को लाहौर का शासक बना दिया।

सन् १७६० की दीवाली के शुभ त्योहार पर सभी सिख जत्थे अमृतसर इकट्ठे हुए ताकि देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर विचार कर आगामी कार्ययोजना बनायी जा सके। इस पंथिक इकट्ठे को सम्बोधित करते हुए जस्सा सिंह आहलूवालिया ने कहा, "अब्दाली तो वर्ष भर से दिल्ली में उलझा हुआ

है। अब मौका है कि हम अपनी शक्ति को इक्ट्ठा करके पंजाब में अब्दाली राज्य की जड़ें कहीं भी न जमने दें। हमें पंजाब में उसके सभी हिमायतियों को समाप्त करना होगा। जिन लोगों ने देश से गद्दारी करके विदेशी अब्दाली को आक्रमण हेतु बुलाया है, उन्हें सज़ा देनी होगी। हमारी शक्ति अब निश्चय ही इतनी प्रभावी हो गई है कि दुष्टों को भलीभांति दंडित किया जा सकता है। दुष्ट मुगलों और अफगानों द्वारा ढाये गये हर अत्याचार में हम दुगुने-चौगुने होकर उभरे हैं.. "असीं दूणे चौंणे होए।" आप सब सहमत हों तो अब दुष्ट दलन का यह पवित्र कार्य लाहौर से ही प्रारम्भ किया जाए।"

सारा वातावरण "जो बोले सो निहाल, सत सिरी अकाल" के जयकारों से गूंज उठा। इसका अर्थ आहलूवालिया के कथन का पूर्ण समर्थन ही था। सभी मिसलों के प्रमुखों ने अपनी अधिकाधिक सेना अमृतसर में ला एकत्रित की। उधर करीमदाद खान को जब यह समाचार मिला तो वह लाहौर छोड़कर खिसक गया। सिख सेना को उसके स्थानापत्र अधिकारी ने रु. ३०,०००/- का नजराना भेंट कर अपनी जान बचाई। मार्च, १७६१ में जब अहमदशाह अब्दाली अपने देश अफगानिस्तान को लौटा तो लाहौर पर जस्सा सिंह कलाल (आहलूवालिया) के नेतृत्व में दल खालसा ने आधिपत्य कर लिया। और (जैसा कि हम इस कथा के प्रारम्भ में उल्लेख कर चुके हैं) जस्सा सिंह से मजाक-मजाक में ही, उसके बादशाह बनने के बारे में कहे गये शब्दों ने सत्य-साकार रूप धारण कर लिया। लाहौर ने जस्सा सिंह आहलूवालिया के स्नेहिल स्वागत में अपनी बाहें सहर्ष फैला दीं। मीर मन्नू तथा अब्दाली जैसे उत्पीड़कों द्वारा चिर पीड़ित-प्रताड़ितहिन्दू समाज को एक लम्बी अवधि के पश्चात जस्सा सिंह आहलुवालिया के माध्यम से लाहौर का शासन संभालने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

यद्यपि लाहौर पर जस्सा सिंह आहलूवालिया का तो अधिकार थोड़े ही समय तक रहा और अब्दाली ने (सन् १७६२) इस पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया, तथापि बाद में शीघ्र ही पुनः यह महत्वपूर्ण नगर भंगी मिसल के साहस द्वारा पुनः हिन्दुत्व की आभा से सुशोभित हुआ।

■

सन् १७६२ का "बड़ा कत्ले-आम"

लाहौर नगर पर दल खालसा के प्रमुख सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया का (सन् १७६१ ई.) आधिपत्य था। पर अब्दाली द्वारा पंजाब के सूबेदार के रूप में नियुक्त उबेद खान अभी भी लाहौर के किले के अन्दर अपनी अफगान सेना सहित सुरक्षित बैठा था।

इसी दौरान जासूसों ने जस्सा सिंह को आकर सूचना कि कि अब्दाली भारत पर छठी बार आक्रमण हेतु कन्धार से चल पड़ा है और अपने इस अभियान में इस दफा उसने सिखों की उभर रही शक्ति को ही नष्ट करने का मन बनाया है। अतः जस्सा सिंह ने उबेद खां तथा अब्दाली, दोनों ओर की अफगान फौजों के बीच में घिर जाने के संभावित संकट से बचने के लिए लाहौर खाली कर देना ही रणनीति के अनुसार उचित समझा।

इन दिनों सभी सिख मिसलदार परस्पर मिलकर पंजाब के अंदर मौजूद अपने शत्रुओं को ठिकाने लगाने के प्रयत्न में संलग्न थे। उन्होंने जंडियाला के गिर्द घेरा डाल रखा था। दुर्रानी (अब्दाली) ने पंजाब पहुँच कर खाली कर दिये गये लाहौर पर कब्जा किया और एक लम्बा चक्कर लगाकर, जंडियाला पर घेरा डाले हुए सिख वीरों को घेरना चाहा। परन्तु जब सिखों को अब्दाली के लाहौर से चलने की सूचना मिली तो उन्होंने यह समझा कि दुर्रानी, लक्खी जंगल में टिके उनके बाल-बच्चों की टोह पाकर उस ओर बढ़ रहा है।

अतः उन्होंने जंडियाला का घेरा उठा लिया, और लक्खी जंगल की ओर इसलिए चल पड़े कि वहां रह रहे अपने परिवारों को पहले निकाल कर आनन्दपुर की ओर की सुरक्षित जगहों में पहुंचा देंगे और फिर निश्चिन्त होकर दुर्रानियों का मुकाबला करेंगे।

पुरानी परम्परा के अनुसार चाहे सिखों के साथ नवाब मालेरकोटला के सम्बन्ध कुछ अच्छे रहे थे किन्तु अब नवाब भीखन खान के मन में अपने अफगान भाईचारे के दृष्टिगत जैनखान, सूबेदार सरहिन्द व उसके मालिक अहमद शाह अब्दाली के प्रति स्वाभाविक स्नेह जाग उठा। उसने अपने क्षेत्र के सभी गांवों के चौधरियों को बुलवा भेजा और उन्हें आदेश दिया कि तुम्हारा भला इसी में है कि नवाब जैन खान के साथ मिलकर पूरे जोर से सिखों को आगे बढ़ने से रोको और घेरा डालकर उन्हें समाप्त कर डालो। उसने अब्दाली को भी यह सूचना भेजी कि "सिख इन दिनों मालेरकोटला के पास एकत्र हैं और यदि उन पर इसी समय आक्रमण किया गया तो उन्हें बहुत आसानी से समाप्त किया जा सकता है।"

यह समाचार पाकर अब्दाली ने दो सवार बड़ी तेजी के साथ नवाब जैनखान सूबेदार सरहिन्द व भीखन खान नवाब मालेरकोटला के पास भेजे और आश्वासन दिया कि "घबराओ मत। हम कल सवेरे ही तुम्हारी मदद के लिए पहुंच जायेंगे। हौसला रखो।"

तब सिख सैनिक अपने परिवारों के लोगों को लक्खी जंगल से निकाल कर जिला संगरूर के कुप्प और रहीड़ा नामक गांवों से गुजर रहे थे। उनका पीछा करता हुआ अब्दाली ३ फरवरी, १७६२ प्रातः मालेरकोटला से ७ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित उक्त ग्रामों के पास पहुंच गया। उसने सरहिन्द के सूबेदार जैन खान और मालेरकोटला के नवाब भीखन खान को यह निर्देश दिया कि वे सिखों पर आगे की ओर से आक्रमण करें और उन्हें छोटी-मोटी लड़ाई में उलझाये रखें। उसने स्वयं उन पर पीछे से हमला करने की योजना बनाई।

इस हमले में गांवों के आम मुसलमानों ने भी इस्लाम के नाम पर अब्दाली की फौज का साथ दिया। अब्दाली ने अपने फौजियों को हुक्म दिया कि उन्हें जो भी लोग भारतीय वेश में मिलें, उन सभी को वे बिना किसी पूछताछ के मौत के घाट उतार दें।

जैन खान व भीखन खान के फौजियों और सिख सेना में बहुत दूर

से ही पहचान की जा सके, इसके लिए जैन खान व भीखन खान के फौजियों को अपनी पगड़ियों में हरे पत्ते रखने का आदेश दिया गया।

इस युद्ध में चड़त सिंह सुकरचकिया ने भी बड़ी बहादुरी का सबूत दिया। जस्सा सिंह आहलूवालिया तथा चड़त सिंह सुकरचकिया ने भारी सेना लेकर तीन बार दुर्रानियों की फौज पर धावा बोला।

दो बार तो वे अहमद शाह अब्दाली तक पहुंचने में सफल भी हो गये थे। सरदार जस्सा सिंह ने अब्दाली को ऊँचे स्वर में पुकारते हुए कहा , अगर तुम सचमुच मर्द हो तो जैसे चाहो, मुझसे दो-दो हाथ कर देखो। हो जाए हम दोनों में द्वंद्व और दुनिया देखे कि सच्चा वीर कौन है।"

सरदार जस्सा सिंह ने उसे बार-बार ललकारा। किन्तु अब्दाली को उस वीर के सामने आने का साहस न हुआ। अपनी फौज की भीड़ के एक ओर छिपकर बच निकलने में ही उसने अपना भला समझा।

सिख वीर, दुश्मन को धकेलते हुए आगे बढ़ने लगें। अफगानों की सेना की तुलना में उनकी सेना की संख्या कम होने के कारण उन्होंने एक स्थान पर डटकर लड़ने की युद्ध नीति न अपनाई, बल्कि लड़ते-लड़ते ही आगे बढ़ना उचित समझा।

लगभग सभी सिख सरदार तथा जत्थेदार इस युद्ध में शामिल थे। पर उनके साथ इस समूह में अधिकांश संख्या उनके परिवारों के वृद्धों, स्त्रियों और बच्चों की थी, जो युद्ध करने में सर्वथा असमर्थ थे। अतः यह एक असमान युद्ध था। सिख वीर अपनी पहले "आघात करो और भाग जाओ" वाली रणनीति न अपना सकते थे, क्योंकि उनके साथ उनके परिवार चल रहे थे। उन्हें छोड़कर वह न जा सकते थे। उनके लिए अब अफगान फौज के सामने होकर युद्ध करना अनिवार्य हो गया था, जिसकी संख्या तीस-बत्तीस हजार से भी अधिक थी। अतः सिख योद्धाओं ने स्त्रियों, वृद्धों और बच्चों के गिर्द घेरा डालकर व्यूह-सा बना लिया और रक्षात्मक लड़ाई लड़ते हुए आगे की ओर बढ़ने लगे। अहमद शाह अब्दाली उनके साथ एक जगह स्थिर होकर युद्ध करना चाहता था किन्तु वे अपनी सुविचारित युद्ध नीति के अनुसार लड़ते-लड़ते

आगे बढ़ते चले जा रहे थे। यह क्रम निरंतर जारी रहा। सिख वीरों का लक्ष्य बरनाला पहुंचने का था। उन्हें आशा थी कि वहां उन्हें बाबा आला सिंह की सहायता प्राप्त हो जाएगी, और यदि सहायता न भी मिली तो वे भटिण्डा की मरु भूमि (रेगिस्तान) की ओर निकल जायेंगे, जहां अफगान सेना उनका पीछा करने का दुःसाहस न कर सकेगी।

किन्तु पूर्व इसके कि वे बरनाला पहुंच पाते, अहमद शाह अब्दाली की फौज मौका पाकर उनका घेरा तोड़ने में सफल हो गयी।

बीस-बाईस हजार स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों के इर्द-गिर्द दो-ढाई हजार सैनिकों के लिये कोई दृढ़ घेरा बनाये रखना कठिन ही था। अतः वे उनकी अधिक समय तक रक्षा न कर सके।

शत्रुओं की तीस-बतीस हजार से भी अधिक की फौज व उसके साथ आ मिले स्थानीय मुसलमानों के साथ चलते-चलते किये जाने वाले इस युद्ध में सिखों का यह नाममात्र का व्यूह अन्ततोगत्वा टूट गया। व्यूह क्या टूटा, कहर ही टूट पड़ा। अब्दाली फौज ने स्त्रियों व निःशस्त्र वृद्धों व बच्चों का कत्लेआम बडी निर्दयता से शुरू कर दिया। रणस्थल में हाहाकार मच गया। सिखों के लगभग, २० हजार से अधिक परिवारजनों की जानें गईं। चारों ओर निरीह सिखों के खून की नदियां बह निकलीं। सारे क्षेत्र में लाल रंग की चादर-सी बिछ गई। ५ फरवरी, १७६२ ई. का यह कत्लेआम इतना अधिक भीषण था, कि भारत के इतिहास में यह "वड्डा घल्लूघारा" (बड़ा कत्लेआम) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वे सब इसलिए मारे गये कि वे अत्याचारी, धर्मोन्मादी तानाशाह और नृशंस विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध सीने तानकर डटे थे। वे राष्ट्र-भक्ति की पवित्र भावनाओं से भरे थे। वे अटूट विश्वास, अक्षय निष्ठा, सुदृढ़ निश्चय व आदर्श एवं धर्म की खातिर कष्ट सहन करने के अद्वितीय साहस से ओत-प्रोत थे। उन्होंने शानदार शहादत प्राप्त की। वे इतिहास के पृष्ठों में अविस्मरणीय हो गये।

बावजूद इस बात के कि सन् १७६२ के इस घल्लूघारे में सिखों की

बीस हजार से भी अधिक जानें गई थीं, परिवारों के परिवार नष्ट हो गये थे और सभी सिख सैनिकों के मन में भारी पीड़ा व वेदना थी, उनमें निराशा फैलने की बजाए प्रतिशोध की भावना ने ही जोश मारा। उन्होंने शीघ्र ही पुनः शक्ति-संचय किया और पंजाब में स्थान-स्थान पर अधिकार जमा लिया।

कुप्प-रहीड़ा के इस बड़े घल्लूघारे के मूल कारण मालेरकोटला के नवाब भीखन खान को सन् १७६३ ई. में और सरहिन्द के सूबेदार नवाब जैन खान को सन् १७६४ में युद्ध में मारकर उन्होंने शत्रुओं से समुचित बदला लिया, क्योंकि यही दो नवाब थे, जिन्होंने अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) की सहायता लेकर सिखों का सर्वनाश करने का भरपूर यत्न किया।